सत्यनारायण ग्रंथमाला—सं० १

❀ श्री ❀

हृदय-तरंग

अर्थात्

स्व० कविरत्न पं० सत्यनारायण शर्मा
कविभूषण की
फुटकर कविताओं का संग्रह

संपादक—

अयोध्याप्रसाद पाठक, बी० ए०, एल-एल०, बी०

नवीन संशोधित
द्वितीय संस्करण

प्रकाशक—

श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा

१९४० ई०
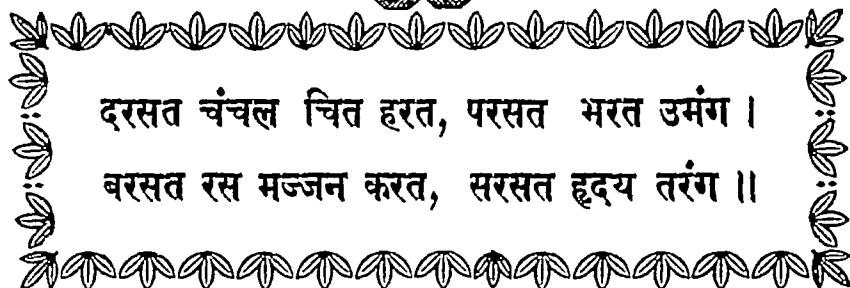
दरसत चंचल चित हरत, परसत भरत उमंग।
बरसत रस मज्जन करत, सरसत हृदय तरंग ॥

निदरत करि उपहास जे, लखि यह रचना साज।
समझि लेइ ते यतन यह, नहिं किंचित तिन काज ॥
उपजै मति कोऊ सुहृद, मो गुन परखन-हार।
है यह समय अगाध बहु, औ अपार संसार ॥

—भवभूति

विषयानुक्रमणिका

विनय

उपालम्भ

स्वदेश भक्ति

प्रेमकली

भ्रमरदूत

प्राकृतिक सौन्दर्य

श्री ब्रजभाषा

हास्य

प्रशस्ति

कविता कुंज

रूपान्तर

द्वितीय खण्ड

विषयानुक्रमणिका

मंगलाचरण

पृष्ठ

देशदशा

चेतावनी

समस्या-पूर्ति

पद

दोहे

रूपान्तर

स्वर्गीय प० सत्यनारायणजी 'कविरत्न'

* श्री *

दो शब्द

किसी कवि की कविता समझने मे, उसके जीवन तथा जीवन सम्बन्धिनी घटनाओ का नकशा सामने होने से, बडी सहायता मिलती है। अगरेजी कवि स्काट मिल्टन, बाइरन, वर्डसवर्थ इत्यादि तथा उर्दू कवि मीर, इन्शा गालिब वगैरः की विस्तृत जीवनी देखने से उनकी कविता के सूक्ष्मभाव बड़ी सुगमता से समझ मे आ जाते है। इसी प्रकार कविरत्न प० सत्यनारायण की जीवनी तथा जीवन सम्बन्धिनी घटनाओं को जान लेने पर, उनकी कविता का समझना आसान हो जाता है।

प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने वडे परिश्रम से कविरत्न सत्य-नारायण की जीवनी लिखकर प्रकाशित करा दी है। यह महत्वपूर्ण काम तो होगया, परन्तु यहाँ कविता से सम्बन्धित जीवन-घटनाओ का कुछ उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ, इसलिये यह काम मेरे सुपुर्द किया गया है।

प० सत्यनारायणजी से मेरा परिचय सन १९०३ ई० मे हुआ। मैं अगरेजी मिडिल पास कर चुका था और वे एन्ट्रेन्स मे पढ़ते थे—एक कक्षा का फर्क था। पंडितजी ने तब से अपने मरण-काल पर्यन्त खूब "हित करके नेह" निबाहा। अफसोस यह रहा कि अन्त मे वे विना कुछ कहे सुने ही चले गये।

यह वह जमाना था जब अन्य नगरों की भाँति आगरे मे भी आर्यसमाज तथा सनातनधर्म सभाओ के अखाड़ों की छेड़छाड रहा करती थी। खंडन मडन जोरों पर था। स्वामी हसस्वरूप, बाबा आलाराम सागर, प० दीनदयालु इत्यादि समय-समय पर

पधारा करते थे। भजनीकों के मोरचे रुप जाते थे। पं० सत्यनारायणजी की ड्यूटी सी थी कि वे हरएक सभा में मंगलाचरण और कुछ कविता बनाकर सुनाया करें।

"हित करिके नेह निभैयो घटघट के अंतरजामी"

तभी का भजन है। स्वामी हंसस्वरूप का व्याख्यान—

'जटा कटाहसभ्रम भ्रमन्निलिप निर्झरी'

से प्रारंभ होता था। फर्रुखाबादी गजाधरप्रसाद "नवीन" कवि अपना समश्लोकी शिवताण्डव स्तोत्र बनाकर यहाँ लाये थे और वे डाढ़ी फटकार फटकार कर—

"भवानि के अनूप नैन सैन हाव भाव मे"

बड़ी ख़ूबी से सुनाया करते थे। समश्लोकी अनुवादों की धूम थी। पं० सत्यनारायणजी का शिवताण्डव स्तोत्र, चर्पट पंजरी, और रघुवंश का समश्लोकी अनुवाद तभी का है।

सैन्ट जान्स स्कूल मे बाइबिल-शिक्षा अनिवार्य थी—परीक्षा भी हुआ करती थी। इम्तहान में इंजील के एक प्रश्न मे कुछ वाक्यों की व्याख्या कराई गई जिनमें एक यह था—

"जो कैसर का है वह कैसर को दो, और जो ईश्वर का है वह ईश्वर को दो।"

प० सत्यनारायणजी ने, धर्मसभाओं से संबध रखने के कारण, इस एक ही वाक्य की विशद व्याख्या करके पूरी कापी भरदी। यह देख कर श्री टामस साहब हैडमास्टर को कहना पड़ा कि सत्यनारायण, तुम तो एक नयो बाइबिल बना डालो। उन पर ईसाई मिशनरी स्कूल का प्रभाव पड़ा। इसीकी छाया नीचे लिखी पंक्तियों में साफ झलक रही है—

भेज्यो कहूँ प्रतिनिधी प्रियपुत्र आप,
मेटे जहाँ जनन के त्रयताप पाप।

ह्वै भक्तप्रेम-बस भारत भूमि भारे,
देवेश आपुहि यहाँ कृपया पधारे ॥

मिढ़ाकुर के देहाती हिन्दी मदरसे मे "कवि कुन्दनलाल मिढा-कुरवारे" ने सत्यनारायण के हृदय-क्षेत्र मे जो कविता बेल बो दी थी वही काल-क्रम से अंकुरित होकर अपने पात फैलाने लगी थी।

"राजपूत" प्रेस व स्वदेशबान्धव (मासिक पत्र) के मालिक कुँ० हनुमन्तसिंह रघुवंशी बहुतो को हिन्दी लिखने-पढ़ने का अभ्यास करा गये। उस समय "राजपूत" का जोर था, "चित्तौर चातकी" बनारस में गंगाजी में डुबाई जा चुकी थी। ठाकुर सूर्य-कुमार वर्मा उन दिनो यहीं थे। १९०५ ई० से स्वदेशी आन्दोलन जड़ पकडने लगा था।

देश सेवा चारु उन्नति नागरी सुप्रचार।

निज धर्म जानि 'स्वदेश बांधव" को भयौ अवतार।

"स्वदेश बाधव" के लिए उपयुक्त मोटो बनाकर उसमें कविता देना पडित सत्यनारायण का 'धर्म" होगया। उस जमाने में जितनी कविताएँ रची गयीं सबही में स्वदेश-प्रेम की झलक पाई जाती है। उधर बंगाल से—

'सुजला सुफला मलयज शीतलां शस्य श्यामला मातरम्' की ध्वनि उठी तो इधर—

'बन्दौं मातृभूमि मनभावनि' की आवाज़ गूंजने लगी। हरेक जलसे में पं० सत्यनारायणजी मातृभूमि का राग अलापते सुनाई पड़ते थे।

चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र बी० ए० उन दिनो आगरे में आबकारी इन्स्पेक्टर थे। चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसादजी प्रयाग से "श्री राघवेन्द्र" निकाल रहे थे। पं० श्रीधर पाठक का—

"स्वर्ग और कश्मीर दोउन मे को है सुन्दर।
को उपमा को भौन रूप को कौन समुन्दर"॥

हिन्दी ससार को मथ रहा था। इधर पंडित सत्यनारायणजी एन्ट्रेन्स पास करके एफ० ए० मे पढ रहे थे—हौसले बढ़े हुए थे। स्वामी रामतीर्थ से भेट हो चुकी थी—भारत-धर्म-महामडल के मच से प्रयाग मे कविता पढ चुके थे. चतुर्वेदी देवीप्रसादजी एम० ए० फीरोजाबादी कवि "बोधा" और "ठाकुर" की कविताएँ सुनाते, उधर मिश्रजी अपने मधुर कठ से कविता पाठ करते। घटो बैठक रहती। काव्यमय वातावरण का प्रभाव जमता गया। तबियत में कविता थी ही। प० सत्यनारायण की कविता निखरती गयी।

प्रसिद्ध कवि प० अक्षयवट मिश्र ने संस्कृत दोहो मे 'राधा माधव विलास" प्रकाशित कराया। द्विवेदीजी ने बडी प्रशंसा की। पं० सत्यनारायण ने पुस्तक पाते ही हिन्दी दोहो में उसका अनुवाद करके अक्षयवट जी के पास भेज दिया जो उन्हे बहुत पसन्द आया।

भव-बाधागाधा हरन राधा राधापीय।
दुख दारिद दरि विस्तरहु मगल मेरे हीय॥

अरे कान्ह दधि मथनिया क्यों डारत कर तात ?
चैंटी जो जामे गिरी तिनहि निकारन, मात॥

..

कंजन खजन मिरग मख मद गंजन छवि दैन।
लसत मैन मद गेन से राधा तेरे नैन॥

अरी मुरलिया तैं करयौ कौन कठिन तप बीर।
जो पीवत हरि अधर रस नासत भव भय भीर॥

का सखि तहँ फूले न बन करत न कोकिल कूक।
नहि आवन पिय हेतु का होत हृदय मे हूक॥

... ..

कहुर कागा परम प्रिय प्रिय आवन की बात।
तिन आये हौं देउँगी तोहि दूध अरु भात॥

. ..

जैसे-जैसे अँगरेजी कवियो की सरस कविताएँ देखने मे आईं वैसे-वैसे प० सत्यनारायणजी की कविता मे निखार बढता गया। टैनीसन का 'ईनोक आर्डन' एफ० ए० कोर्स मे था। पडित जी की सदा से आदत थी कि पढ़ते-पढाते यदि किसी किताब की कोई बात मन मे चुभी तो उसे कविता बनाकर वहीं पेन्सिल से अङ्कित कर लिया। बहुधा पुस्तके इसी प्रकार रँगी हुई है। रघुवश का अनुवाद इमी तरह हुआ।

पूजी तबै धेनु महीप बाला
चढाय के अक्षत गध माला।
चुगाय बच्छा नृप बाँधि लीन्हों
गो कों यशस्वी वन छाँडि दीन्हों॥
खुजाइ, दैके तृण कौर प्यारे
बिड़ारि ता माछर डाँस भारे।
बेरोक स्वच्छन्द जु ढील दीनी
भूपाल ह्वै तत्पर सेव कीनी॥

—रघुवंश

जिमि कोउ जाइ तड़ाग बुडावति गागर गोरी।
मन लागी नित भरनहार रसिया सों डोरी॥
मुखलों सो भरिजात बहत जल बबलत ता धुनि।
प्रिय सनेह बस पर तिय सुनत न सकल सबद सुनि॥

करन प्रार्थना लग्यो हृदय भरि प्रेम रसायन।
द्वैत भाव तजि जहाँ मिलत नित नर नारायन ।।

—टेनीसन

चतुर्वेदी श्री रामनारायण मिश्र काश्मीर सुखमा देखकर बोले कि पाठकजी ने रोला छन्द की कविता का खात्मा कर दिया। पं० सत्यनारायणजी ने बसंत-स्वागत और पावस-पमोद उसी समय रोला-छन्द मे लिखे। कविवर सरोज का कहना है कि नये कवियो के लिये ऐसा सुन्दर रोला-छन्द लिखना सरल काम नहीं है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इन कविताओ की बड़ी प्रशंसा की थी और "सरस्वती" में उन्हे प्रकाशित भी किया था।

लखनऊ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन था। बाबू श्यामसुन्दरदास तथा मिश्र वंधुओ का दौर-दौरा था। उर्दू-प्रधान-क्षेत्र मे खड़ीबोली के आगे बेचारी व्रजभाषा को भला कौन पूँछता। मनोनीत सभापति पं० श्रीधर पाठक को खड़ी बोली वाले अपनी ओर खींच रहे थे। प० सत्यनारायणजी श्वास रोग पीड़ित थे—रातो नहीं सो पाते थे। पाठकजी का आगरे से घनिष्ट सम्बन्ध था। बुलावा आया जिसने प० सत्यनारायणजी को बड़े असमंजस मे डाल दिया। नियत तिथि से तीन दिन पहिले चलने का निश्चय हुआ। पंडित जी से कहा गया कि लखनऊ में व्रजभाषा का डंका बजना चाहिये। रातोरात "व्रजभाषा" शीर्षक कविता लिखी गयी और सवेरे पुरजों पर से पढ़ी गयी। दिन भर मे कम्पोज होकर छापी गयी। लखनऊ पहुँच कर सत्यनारायणजी सीधे पाठकजी से मिले। पूछा—'कुछ बनाकर भी लाये हो"—"व्रजभाषा" सुनायी गयी। वह दृश्य आँखो मे है, पाठकजी सुनते और झूमते जाते थे—"भई वाह, रास पचाध्यायी का आनन्द आ रहा है"।

दूसरे दिन सभापतिजी ने प० सत्यनारायणजी को मंच पर से बुलाया—'व्रजभाषा" पढ़वाई गयी।

बरनन को करि सकत भला तिह भाषा कोटी।
मचलि मचलि जामें मॉगी हरि माखन रोटी॥

राय देवीप्रसाद "पूर्ण" ने पीठ ठोकी। बाबू प्रयागनारायणजी भार्गव पं० सत्यनारायणजी को मोटर मे बिठाकर अपने नवल-किशोर प्रेस में ले गये—लखनऊ के सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर सी० मल० ने फोटो खींचा जो अब तक छापा जाता है। गढ़ जीत राजी खुशी घर लौटे। आगरे आकर फिर बीमार पड गये। भरतपुर अपना इलाज कराने जाते थे, वहीं पर कविवर सोमनाथ चतुर्वेदी का माधव विनोद देखा, और उसी के ढग से भवभूति कृत मालती-माधव का सुन्दर गद्य पद्यात्मक अनुवाद किया। उत्तर रामचरित्र नाटक पहले प्रकाशित हो चुका था। मालती माधव का प्रकाशन कविरत्न जी के जीवन-काल मे प्रारम्भ हो गया था परन्तु समाप्त नही हो पाया था। कास रोग में जब रात को गले मे कफ अटकता और श्वास फूलता तो सत्यनारायणजी कहा करते "कवि की जिह्वा पर सरस्वती का निवास होता है—जो बात मुँह से निकल गई वह पूरी होकर रहती है। उत्तर रामचरित्र मे श्रीराम-चन्द्रजी को क्या रुलाया, सब दुख अपने ऊपर ले लिया है—

करत 'घरघर' घोर घूमत झाग देत अपार—

जरत करत पै भसम ना दौं लागी तन मांहि—

.. ..

सो मैं प्रत्यक्ष भोग रहा हूँ।"

बस अब नहिं जाति सही
विपुल वेदना विविध भाँति जो तन मन व्यापि रही
कबलौं सहें अवधि सहिबे की कछु तो निश्चित कीजै
दीनबन्धु यह दीन दशा लखि क्यों नहिं हृदय पसीजै

उसी समय लिखी गई थी।

प० सत्यनारायणजी में एक खास बात यह भी थी कि वे अपनी कविता सुनाने में किसी समय भी तकल्लुफ़ नहीं करते थे। और जो बात उन्हें सुझाई जाती—या उनकी कविता में जो 'इसलाह' की जाती, उस पर न तो वे चिढ़ते थे और न बुरा मानते थे। पं० बदरीनाथ भट्ट ने मालती माधव का प्रारम्भिक नान्दी पाठ मनहरण से ध्रुपद करा दिया था।

उपर्युक्त घटनाएँ केवल इसलिए लिखी गयी है जिससे ज्ञात हो जाय कि सत्यनारायणजी की कविता का विकास क्रमशः किस प्रकार होता गया और उन पर परिस्थिति का प्रभाव कैसे पड़ता गया। वे परिपक्वता प्राप्त करके न जाने और क्या क्या लिखते, परन्तु दुर्भाग्यवश वह समय आया ही नहीं।

'हृदय तरंग" अब की बार दो खंडों मे प्रकाशित हो रही है। प्रथम खण्ड में जो कविताएँ रक्खी हैं वे छात्रोपयोगी होने के कारण एक स्थान पर ले आई गयी है—शेष कविताएँ दूसरे खण्ड मे रक्खी गई है। प्रथम संस्करण मे सत्यनारायणजी की अन्य प्रकाशित पुस्तकों से कोई उद्धरण नहीं लिये गये थे परन्तु इस सस्करण मे अन्य पुस्तकों से भी कुछ अवतरण दे दिये गये है जिससे पाठको को उन कविताओं का भी कुछ नमूना मिल जाय। जहाँ तक पता चला है प्रत्येक कविता के नीचे उसकी रचना-तिथि भी दे दी गयी है, जिससे पाठक जान सके कि कौनसी कविता कवि ने किस समय रची। आशा है यह परिवर्द्धित सस्करण साहित्य-प्रेमियो को रुचिकर प्रतीत होगा।

आगरा
विजया दशमी
सं० १९९७ वि०

अयोध्याप्रसाद पाठक

प्रस्तावना

स्व० सत्यनारायणजी ने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा था—"आपके पत्र से ज्ञात—विश्वास—हुआ कि 'हृदय-तरङ्ग' इस ससार में उठ सकेगी—यह इस ग्रामीण हृदय का सच्चा नैसर्गिक उद्गार है ।"—'हृदय तरङ्ग' एक बार तब प्रकाशित हुई और उसका खूब स्वागत हुआ—और दूसरी बार अब उसका सस्करण निकाला जा रहा है। आज हम उस काल से दूर हट आये हैं। हिन्दी-साहित्य-संसार अपनी द्रुतगति से लगभग दो दशाब्दियाँ पार कर चुका है। इस अवकाश मे हिन्दी मे कई साहित्यिक क्रान्तियाँ हो गई हैं। नये विचारो के प्रादुर्भाव के साथ नवीन काव्य में सौन्दर्य की कल्पना विराट् और विशद होती जारही है। नागरिक-रुचि मे एक महान् सस्कार होता दिखाई पडने लगा है। सौन्दर्य की अमूर्त, अपूर्व प्राकृत किन्तु सरस कल्पना मे अनुभूति के प्राण डाले जारहे हैं। साहित्य का डाँड अब बिल्कुल नये खेवो के हाथ है। न जाने किस किनारे लगादें।

सत्यनारायणजी का सहज और भोला रूप अब हमे देखने को नही मिलता, न उनकी कविता के पढ़ने के सरस ढग का अमृत ही हमारे कानो को मिलता है। इन सब बाहरी प्रभावो का एक दम अभाव हो गया है। फिर भी 'हृदय-तरङ्ग' की

आवश्यकता समझी जा रही है। और अब हम उनके 'व्यक्तित्व' से अधिक 'कवित्व' को जानना चाहते है।

आज कुछ लोग कहते है "सत्यनारायण मे 'कुछ' था नहीं और 'कुछ' है नहीं, उन्हे उनके मित्रो ने इतना बढ़ा दिया है।" हो सकता है—जो व्यक्ति पितृ-विहीन, एक साधु की कुटिया मे प्रकट हो, जो माता को छोड़ दूसरा कोई सम्बन्ध लेकर ही संसार मे न आया हो, और वहाँ पला हो जहाँ आत्म-विज्ञापन के स्थान पर नम्रता, आत्म-आग्रह के स्थान पर भोलापन और प्रवंचना के स्थान पर सहज पवित्रता हो, जो सचमुच अपनी टेक—

'कोरो 'सत्य' गाम कौ वासी कहा तकल्लुफ जाने।'

की साक्षात् प्रतिमा हो, जिसकी दुपल्ली टोपी (उन दिनो की, जब गान्धी कैप फैशन मे नहीं आई थी) और देहाती बगलबन्दी की छवि मे थोड़ा भी हृदय-स्पर्शी ओज न हो, जिसके मुख की रूप रेखायें चर्मचक्षुओ के लिए शुष्क और नीरस हो उसके मित्र उस ग्रामीण को इतना बडा क्यो करना चाहेंगे ? उसका स्वभाव मोहक हो सकता है, उसका आन्तरिक गुण आकर्षक हो सकता है, उसके स्वर मे मिठास और आँखो मे मृगछौनो की-सी कोमलता और भोलापन हो सकता है, पर इन सबके लिए केवल कविरत्न सत्यनारायण को ही उनके 'मित्रो' ने क्यो चुना ? यह एक प्रश्न है। जीवन मे अन्तर और बाह्य दोनो की साथ-साथ सृष्टि होती है, सत्यनारायणजी के उस रूखे बाह्य मे सरस अन्तर की—'कवि' की जगमगाहट थी। उसी 'कवि' ने अनेको को आकृष्ट कर लिया, उसी 'कवि' पर लोग फिदा होगये।

सत्यनारायण का 'कवि' ग्राम्य सुषमा लेकर आया। ब्रजभाषा के अन्तिम खेवे के कवियो मे भारतेन्दुजी से लेकर सत्यनारायणजी

तक भाषा की भी उतनी सहजता नहीं रही थी, भाव और विषय तो सर्वथा शहरी मनोवृत्ति और चिकने विलास के परिणाम थे। खड़ी बोली का जागरण व्रजभाषा के बल और जीवन का शोषण करता जा रहा था। यद्यपि यह कहा जाता था कि कविता व्रजभाषा में ही अच्छी हो सकती है, 'व्रजभाषा-सी पै सुठि लौनी कहाँ ?' यह सब कहा जाता था, पर खड़ी बोली में कविता के प्रयोग भी भारतेन्दुजी से ही आरम्भ होगये थे। उन्होंने कई गीत खडी बोली मे लिखे भी थे। खडी बोली बोलचाल की भी भाषा हो चली थी, गद्य तो उसी के हिस्से था ही। यह सब व्रजभाषा के पक्ष में घातक सिद्ध हो रहा था। जनाभिरुचि की विद्युत्-तरङ्ग से रहित हो जाने पर भाषा का जीवन-स्नेह मन्द पड़ जाता है। समाचार-पत्रों के युग ने खडीबोली में उस विद्युत्तरंग का सम्पर्क कर दिया। उस संधि-स्थल पर दोनों भाषाओं मे समझौता हुआ, भारतेन्दुजी और उनके खेवे के साहित्यिकों ने कहा—गद्य खड़ी बोली मे, पद्य व्रजभाषा मे। व्यवसायात्मिकावृत्ति की पोषक खड़ी बोली बनी, रागात्मकवृत्ति की व्रजभाषा।

किन्तु यह समझौता अधिक काल तक स्थिर न रह सका। साहित्यिकों का मानस द्विवेदीजी तक आते-आते खड़ी बोली से अभिभूत हो उठा। उधर खडी बोली चेतन हाथों में पड़ी थी—सम्पादकों और लेखकों के हाथ में। उन लोगों के हाथ में जिन्हें निरंतर विकास, परिमार्जन और परिशोधन का काम था, जो अपने अस्तित्व को सार्थक बनाये रखने के लिए उपर्युक्त बातों पर ध्यान रखते थे, तथा जिन्हें अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपनी कृतियों को अधिकाधिक नवोन्मेष से युक्त, स-ओज, जीवन-प्रद तथा सुरुचिग्राही और आकर्षक करने को उत्सुक

और उन्मुख रहना पड़ता था—वे मनोरागो का भी आदर किये बिना कैसे रह सकते थे ? इतनी लेखनियाँ चलीं, प्रतिदिन पृष्ठ पर पृष्ठ पत्रों के भरे जाने लगे—और ये सब खड़ी बोली में। खड़ी बोली चमक उठी, सजीव हो उठी और मधुर भी हुई। ब्रजभाषा केवल कवियों के हाथो मे रही। मनोरागो का व्यवसाय केवल मनोरञ्जन के लिए करने वाले व्यक्ति—कवि गिनती मे थोडे रह गये। अधिकांश इस युग मे हरिश्चद्र ही की भाँति दोनो कर्म करने वाले हुए : कवि भी और लेखक भी। एक ही व्यक्ति का लेखक खड़ी बोली का, और कवि ब्रजभाषा का हुआ। इस संयोग ने भी ब्रजभाषा को जीवनहीन बना दिया, क्योकि वह व्यक्ति दोनो में से एक दूसरी को रस देता था, पर जैसे स्याही सोख्ता स्याही की तरल सरसता को चूस लेता है, वैसे ही खड़ीबोली ब्रजभाषा मे कलम की तरह लहलहाने लगी। यह उस पूर्व के समझौते को तोड़ने की तैयारी थी। ब्रजभाषा के मनोराग व्यवसायी युगधर्म से अलिप्त अपने पूर्व वैभव के मद में मस्त रहे—और उक्ति-आवृति में, रस और अलङ्कार के चमत्कार मे कवि-कर्म की समाप्ति समझ कर जहाँ के तहाँ रहे। इसी समय श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय भी प्रियप्रवास लेकर उठे और ब्रजभाषा को यह कह कर ललकारा कि 'सुठि लौना पन' अथवा सरसता और मधुरता किसी की बपौती नहीं। प्रियप्रवास की भूमिका ने खड़ी बोली को एक यह चेतना दी कि चेष्टा करने पर खड़ी बोली भी मधुर हो सकती है। ब्रजभाषा काव्य के विषय का पल्ला थामे हुए साथ ही ब्रजभाषा की ऊपरी खुशामद करते हुए उपाध्यायजी ने उसे एक लात जमा दी—और ब्रजभाषा को अचकचाते देख लोग कहने लगे—ठीक है, सही ब्रजभाषा में ही विशेष माधुरी और चसक, पर गद्य और पद्य की भाषा

भिन्न क्यो हो ? जिसमे बोलें उसी मे काव्य होना चाहिये। वे रुके नहीं, उन्होंने खडीबोली के 'ऊजड़ गॉव' बसाये, 'भारत-भारती' की गुहार मचायी—समझौता टूट गया। व्रजभाषा अपने काव्य के एकछत्र आधिपत्य से च्युत कर दी गयी। फिर व्रजभाषा में वह सजीवता, और बल कहॉ मिलता ! कवि नये-नये उत्कर्ष देख रहा था—राष्ट्र, देश और जाति में करवट बदलने की सी चेष्टा दिखायी पड रही थी। उस काल का कवि कभी अँग्रेजी शासन की प्रशंसा करता, कभी बुराई करता, कभी राष्ट्रीय महा-सभा की प्रशस्ति गाता—दैन्य और दु:ख से बचने के लिये कुछ खीजता-सा पर बहुत ही अकाव्यात्मक सामग्री लेकर। उस कवि पर वह मौलिकता भी नहीं थी—कवि अधिकांश तुकबन्द होगया था।

उस समय सत्यनारायण मे नगर से दूर क्षितिज की उषा-झिलमिल नीहारिका में ग्राम के अबोध हृदय-स्रोत से अनायास ही निःसृत हो काव्य-धारा अपनी उज्ज्वलता और सरसता से प्रवाहित होने लगी—इस कवि की वाणी से एक बार व्रजभाषा ने अपनी अन्तिम करुण पुकार इस प्रकार गुहराई—और इस प्रकार शायद ही किसी भाषा की पुकार उसके हृदय के साथ रखी गयी होगी—शायद ही किसी कवि ने इतनी करुणा और इतनी शक्ति अपनी भाषा की वकालत में रखीं होगी'—

> क्यो जासो मन फिरयो कृपा करि कछुक जतावौ।
> वृथा आतमा या व्रजभाषा की न सतावौ॥
> जिनके तुम वस परे अहहि ते सकल विमाता।
> व्रजभाषा ही शुद्ध संस्कृत सॉची माता॥
> मातृ-हृदय कौ प्रेम मातृ-हृद ही में आवै।
> ताकौ पावन स्वाद विमाता कबहुँ न पावै॥

टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेम सो।
भरि-भरि देखत नैन तुमहि जो सत्य नेम सो ॥

× × × ×

काज न जब कछु करत सिथिलता तन मे व्यापत।
यही सोचि जननी ब्रजभाषा निसि-दिन कांपत ॥
सुत-सेवा-हित तासु रुचिर रुचि रहत सदा ही।
जनमे पूत कपूत कुमाता माता नाही !!

कितनी प्रबल, मर्म को छू देने वाली—अभिभूत कर लेने वाली इस काव्य की पंक्तियाँ है—वात्सल्य-करुणा का ऐसा रूप तो कोई परित्यक्ता यशोदा अथवा कौशल्या का भी नही रख सका। सत्यनारायण के हृदय मे प्रेमानुभूति की ठेस लगी थी, वहीं उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े अश्रु झर-झर झरने लगे थे—किसी की चाह-सी करुणा उनके उस 'दिले बेजार' मे सदा बैठी रही—और जब-जब उस चकनाचूर अनुभूति को कवि ने जोड़ कर जीवन देना चाहा कि वह बन-बन बिखर पड़ी और खड़ी हो ही नहीं सकी।

कवि ने सन्तोष के लिए कहा तो कि'—

गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है।
याही सौ अधखिली रही यह प्रेम कली है ॥

पर यह अधखिली प्रेम कली अधखिली क्यो रहे ? हम तो पुरातन प्रथा के हामी नहीं—पर कवि को कुछ चारा नहीं, वह असमर्थ था। वह अपने छप्पय के घनीभूत अभाव की करुणा को क्या करे, जिसने उसके प्राण लिये और उसकी प्रेम-कली को अर्ध स्फुटित ही मसल दिया और जब काव्यानुभूति पूर्णता को पहुँचती कि प्रकाश हटा लिया ....

न सही वह, उसकी जो अन्तः-सम्पत्ति थी, उसी पर उस का भरोसा रहा। और पूर्ण परिपाक तक न पहुँचती हुई भी उसकी कविता शाश्वत महाकवित्व की चिनगारी और विद्युत् से स्पर्शित है। उस कविता का कुछ अंश 'हृदय-तरंग' मे सगृहीत हुआ है।

जिस समय 'हृदय-तरग' प्रकाशित हुई थी विविध विद्वानों और कवियो ने उसकी प्रशंसा की थी।

यथार्थ में कविवर सत्यनारायण व्रजभाषा में सामयिकता लाने के प्रयत्न मे शुरू से ही रहे है। भाव मे ही नही, उनके पद्यो के विषय और वर्णन शैली में भी सामयिकता पाई जाती है। 'भ्रमर-दूत' में उनका यह यत्न पूरा सफल होता, यदि वह इतने शीघ्र लोकान्तरित न हो जाते। इसमें यशोदा ने जो सन्देश भेजे हैं उसके वर्ण-वर्ण और अक्षर-अक्षर में स्वदेश-प्रेम और जाति-हितैषिता टपक रही है। इसको पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो शोक–दुःख–जर्जरा स्वयं भारतमाता ही अपने हृदय का उद्‌गार निकाल रही हो।

बाबू श्यामसुन्दरदासजी का कहना है—"कविरत्नजी व्रज-मंडल के रहने वाले, व्रजपति के अनन्य भक्त, वडे ही रसिक और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओ मे व्रज की माधुरी लबालव भरी है। स्वदेशानुराग की सच्ची झलक दिखलाने वाले थोड़े कवियो में इनकी गणना होगी।" बाबूजी की वाणी फली।

सत्यनारायणजी ने राष्ट्रीय कविताएँ जैसी भावपूर्ण, जोशीली और मधुर रची हैं, वैसी हमारी तुच्छ सम्मति में, अब तक तो नहीं बनीं, आगे की राम जानें।

उनकी वाग्देवी भारत-भूमि को नही भूली। छोटे-बड़े सभी काव्यों में हमे मातृभूमि का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उल्लेख मिल

जाता है हिन्दी मे राष्ट्रीयता का ऐसा जागरण दुर्लभ ही है, ब्रज-भाषा मे तो और भी अधिक। यह कवि मे नवोन्मेष की भाँति नवजीवन और नव-स्फूर्ति बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ है।

"पावन परम जहॉ की मंजुल महात्म्य-धारा" के संगीतात्मक स्वरो मे मातृ-भूमि का जो विश्व-रूप उपस्थित किया है उसमें कितना श्रद्धा उद्रेक है—गौरव का प्रकट करने वाला! गुप्तजी और प्रसादजी को भारतीय गौरव को जीवन-दान के जिस श्रेय का भागी समझा जाता है उसकी रूप-रेखा सत्यनारायणजी मे बननी आरम्भ हुई। इस महिमा-मय मूर्ति के साथ कवि ने वर्तमान जर्जरता को भी नहीं भुलाया। गौरव तो भारत के लिए शाश्वत सत्य है—

पहले ही पहले देखा जिसने प्रभात प्यारा।
देवेश को जहॉ पर अवतार लेना भाया॥

× × × ×

कवि भारत-भुवि महतारी की वन्दना कर रहा है:—

बन्दौं भारत-भुवि महतारी।
शेष अस्थि पिंजर बस केवल, भययुत चकित विचारी।
रोग अकाल दुकाल सताई जीरन देह दुखारी।
मुरझाई माधवी लता-सी, जनु पाले की मारी।
गहरे उष्ण उसास भरति जो, नित नव विपति निहारी।
धूल-धूसरित जाकी झलकै अलकै स्वेत उघारी।

मातृ-भूमि को इतने वात्सल्य से सजीव मूर्त कल्पना के साथ कम कवियो ने ही देखा है।

प्रकृति ने तो कवि को वरण ही कर लिया प्रतीत होता है। 'रत्नाकर' की भूमिका मे बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने लिखा है—

"घटना और पात्रों का निर्वाह करने की चिंता मे व्रजभाषा के कवियो को प्रबन्ध क्षेत्र के भीतर तो प्रकृति-वर्णन की सुविधा मिली ही नही, मुक्तको में भी ऋतु-वर्णन अधिकतर नायक-नायिका के ही प्रसंग से किया गया। अत वर्णन की दृष्टि से ऋतुऐं अयथार्थ और नीरस ही रहीं। सेनापति आदि कुछ कवियो ने अवश्य वास्तविकता से काम लिया, परन्तु वह भी बहुत दूर तक नही जाती। प्रत्येक ऋतु की एक सुखद या दुखद भावना ही प्रस्फुटित होकर रह जाती है, प्रकृति के अन्य प्रभाव-शाली रहस्य प्रकट ही नहीं होते। अंगरेजी कवि वर्ड्सवर्थ की-सी प्रकृति की सजीव सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति पुराने हिन्दी के किसी कवि को प्राप्त नहीं हुई। ˙ "

किन्तु लेखक यहाँ सत्यनारायणजी को भूल गया—ध्यान गया ही नहीं। यद्यपि सत्यनारायणजी ने प्रकृति पर विशेष नही लिखा, पर जो लिखा है वह उपेक्षणीय नहीं। उसके रहते हुए बाबूजी का उपर्युक्त कथन अनुचित ठहरता है। सत्यनारायणजी ने ऋतुओ के वर्णन मे बहुत ही यथार्थ सरस और सजीव सत्ता की अनुभूति से युक्त चित्र उपस्थित किए है। आध्यात्मिक अनुभूति चाहे वर्ड्सवर्थ की-सी न हो, किन्तु यथार्थता का अभाव किंचित् भी नहीं।

उस यथातथ्य वर्णन मे सजीवता स्पष्ट ऑख मलते और जमुहाई लेते दिखलाई पड़ती है। वसंत मे कवि कहता है—

लखि तुम्हरे पद-कञ्ज रञ्ज सब भूलि-भूलि वन।
साजि साजि सॅग ललित लहलही लौनी लतिकन॥

भाँति-भाँति के विटप पटनि सजि वे ही आवत ।
कोऊ फल कोऊ फूल मुदित मन भेटहि लावत ॥
"जयति" परसपर कहत पसारत आपनि डारन ।
मनहुँ मत्त मन मिलन मित्र कर कर गर डारन ॥

× × × ×

वह देखौ नव कली भली निज मुखहि निकारति ।
लगि लगि वात प्रभात गात अलसात सम्हारति ॥

प्रकृति का जो रूढ़ि-उत्क्रामक रूप उन्होने देखा वह सर्वथा भव्य और नव्य है। उनके लिए प्रकृति केवल उद्दीपन की वस्तु नहीं। उसका अपना निजी आकर्षण है। ऋतुओ को उन्होने एक शक्ति के रूप मे अनुभव किया। उसमें चेतना है। क्या ब्रज और क्या खड़ीबोली दोनो मे ही अभी तक प्रकृति की चेतन-कल्पना का अभाव था। खडीबोली तो इस समय तक जगत् के धरातल पर थी, वह प्रकृति की ओर देखना चाहती थी। श्रीधर पाठक मे उसकी दृष्टि उधर गई। किन्तु वहाँ प्रकृति सजीव और चेतन नही हुई, केवल उसका सौन्दर्य ही स्फूर्ति-मय हुआ। वह उद्दीपन-क्षेत्र से तो आगे बढ़ी और उसने अपनी ही निकाई को दर्पण मे देख कर सँवारा—सजग लोक मे वह सत्यनारायण के द्वारा पहुँची।

पाठक जी की वाणी इन स्वरो मे विकल हुई है:—

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला,
सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरो मे संगीत की सि कैसी,
सुरीली गुंजार आ रही है।
हर एक स्वर मे नवीनता है,
हरेक पद मे प्रवीनता है।

निराली लय है औ लीनता है,
अलाप अद्भुत मिला रही है।
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो,
सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन कि जो गगन में
कि इतनी चुलबुल मचा रही है।

काश्मीर के सम्बन्ध में उन्होंने कहा:—

कै यह जादूभरी विश्व-बाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली॥
खिली प्रकृति पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार पिटारी॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निजरूप सँवारति।
पलपल पलटति भेस छनिक छवि छिनछिन धारति॥
विमल अम्बुसर-मुकुरन मँह मुख बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन-मन वारति॥

उधर सत्यनारायणजी का वसंत आने को है—

जो तरु विथित-वियोग सदा दरसन तव चाहत।
नौचि-नौचि कच-पातनि अश्रु-प्रवाह प्रवाहत॥
देखहु किशलय नहीं, आँखि अति अरुण भई तिन।
रोवत-रोवत हाय! थके, अब टेर सुनो किन?
तुम्हरी दिसिहि निहारि पुलकि तन, पात हिलावत।
कर सौं मानहुँ मिलन तुमहि निज ओर बुलावत॥
बौरे नहीं रसाल बने बौरे तव कारन।
बलिहारी तव नेह-नियम निठुराई धारन!
तुम सौं कठिन कठोर और जग दूसर दीख न।
सांचो किय निज नाम "पञ्चशर को शर तीखन"।

प्रकृति मे प्रकृति के प्रति आकर्षण, स्वाभाविक भावों का उदय, उनमे परस्पर ही आलंबन और आश्रय का विधान, फिर उसको ऐसा निजी संबोधन कि—

तुम सौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न—

ये सभी प्रकृति की सजग चेतनायुक्त मूर्त कल्पना के द्योतक है। यहाँ पर प्रकृति को अधिष्ठित करके कवि चला गया, उसने छायावादी कवि के लिए सीढ़ी प्रस्तुत कर दी।

इस प्रकृति ने कवि के गाँवों के वातावरण से अपना संसर्ग घनिष्ठ बना रखा है। कवि की ग्रामीणता से प्रकृति के वर्णन बहुत सौम्य हो गये है। उनमे अल्हड़पन है, भोले क्रीड़ा-कौतुकों का आवर्त्तन-विवर्त्तन है, एक आह्लाद है, और फिर एक विषाद है।

उनमे नवयुग की भावना मूल में विद्यमान थी। उन्होंने जो विनय की भाँति पद लिखे—उपालम्भ ही हैं वे—उनमें सूर से भी अधिक उद्दण्डता है—दीनता मे अन्य भक्त कवियो की भाँति उन्होने अपने को पापी अथवा उनमे शिरोमणि नहीं कहा। जहाँ कहा भी है वहाँ सम्भावना के रूप मे, निश्चय के रूप मे नही।

माधव कबलौं मौन गहोगे ?
इन आँखिनु पै धरें ठीकुरी कितने और रहोगे ?

ऐसी शोख़ी, कि भगवान् को निर्लज्ज बताया जा रहा है। कवि के हृदय में भारत की अन्तर्वेदना बैठ गयी है। उसकी भावनाओ का भारत से तादात्म्य हो गया है। यही कारण है कि उसकी विनय सूर आदि पूर्ववर्ती तथा अन्य परवर्ती भक्त कवियो की कोटि मे नही आती। वे जब कहते है यही, कि—

'तुम देखत भारत-मानव-कुल आकुल छिन-छिन छीजै,

× × × ×

अब न सतावौ !
करुणा घन इन नयनन सौं, द्वै बुंदिया ता टपकावौ
सारे जगसो अधिक कियो का, ऐसो हमने पाप।
नित नव दई निर्दई वनि जो देत हमे संताप।,

× × × ×

परेखो प्रेम किये को आवै।

× × × ×

उठो देव, अब या भारत को खोलि युगल दृग देखो।
जासों सत्य बनें सब कारज, करै न कोउ परेखा॥

व्यष्टि की अन्तर्व्यथा पुञ्जीभूत होकर समष्टि के लिए न्योछावर हो गई है। उसकी दीनता के पीछे एक स्वाभिमान उसके काव्य को कितना ऊंचा किये दे रहा है। वह ईश्वर को देखता है, फिर भारत को देखता है, उसकी समझ मे नही आता, ऐसी दयनीय दशा मे कौन होगा जो निष्ठुरता धारण किये रहेगा। उसका व्यथित हृदय रोता है और भगवान् को कोसता है, फिर रुक जाता है। वह कहता है:—

वेद पुरान तुम्हारे जस के, नभ मे महल बनावत।
पै वैसे गुन, छिमा कीजिये, तुम मे एक न पावत॥

इस 'छिमा कीजिये', को तो देखिये ! कवि का हृदय कैसा तिलमिला कर अपनी अभिव्यक्ति को आकुल हो रहा है, पर फिर सोचता है:—

साँची तुमहि सुनावत जो हम, चौकत सकल समाज।
अपनी जाँघ उघारे उघरति, वस अपनी ही लाज॥

कवि की करुणा कैसी आर्द्र है—और यही शाश्वत कवित्व था कवि मे, जिसने सहृदयो को मोह लिया !

यह अन्तर्व्यथा, यह उत्तप्त विषाद, यह आर्द्र करुणा आज युग-धर्म बन गई है। वह स्वयं कवित्व होकर शतधा स्रोतो से हिन्दी-साहित्य को सींच रही है। सत्यनारायण की यह करुणा स्वभावज है—बंगाली अथवा अंग्रेजी अनुकरण पर नहीं। 'प्रेम-कली', 'प्राकृतिक सौन्दर्य' और 'भ्रमर-दूत' मे इसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है।

कवि सत्यनारायण के कवित्व के उदय और उसके अस्त की कथा 'सत्यनारायण की जीवनी' मे श्री पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने दी है। निस्संदेह सत्यनारायणजी का जीवन करुणामय और काव्यमय रहा। उनके कवि-यौवन ने अपने अन्तःप्रेम की मूर्ति बनाना आरम्भ किया था। जो शाश्वत कवित्व कवि मे जग कर मातृ-भूमि के चरणों मे लोट रहा था, वह कभी स्वय शाश्वत पर ही बलिहार होता—कभी अपनी उस करुणा की प्रेम-प्रतिमा को साक्षात खड़ा करता—उसके योग्य स्वर उसके पास था, भाषा की माधुरी उसके पास थी, सब रग उसने जुटा लिये थे, हृदय-सामग्री का अभाव न था, पर न हो सका। उनके जीवन के साथ-साथ ही उनके काव्य का भी भग्नांत हुआ।

'हृदय-तरग' मे ऐसे ही कवि के हृदय की तरंगे है। उनमे हृदय-भुलाने वाली सहृदय ग्राम्य-सुषमा से परिपूर्ण और परिप्लावित देश काल की परिधि से वेष्टित एक उच्च धरातल की काव्यधारा कलकल टलमल सुन सकेंगे। उस काव्य-धारा ने भावों का ऊर्ध्वगामी ज्योति-स्तूप खड़ा किया है—भाषा की मधुरिमा से मण्डित, प्रेम की अधखिली कली से सुवासित तथा शाश्वत करुणा से अनुप्राणित। उसमे हृदय सर की छोटी-बड़ी सभी तरंगें है यानी हलकी बीचिये भी और लहरे भी। उनसे दोलित मन ही स्पष्ट अनुभव कर सकेगा कि सत्यनारायण का

कवि कितने गहरे मर्म मे चुटकी ले रहा है। उसमे पाण्डित्य का प्रदर्शन न हो—पाण्डित्य कविता को बोझल बनाता है, उसे अप-रूप कर देता है, उसमे अलंकार और उक्तियो का (अभिप्राय वक्र उक्तियो से है) चमत्कार न हो, किन्तु वह हृदय है जो सूर मीरा और तुलसी को मिला और जिसने अपना इष्ट अपना देश-प्रेम बनाया।

छह सात वर्ष की अवस्था से ही कविता करने वाला यह जन्म-सिद्ध कवि थोड़ा ही अवकाश पा सका। १५ अप्रैल १९१८ को वह हृदय मे करुणा 'पुञ्जीभूत किये, सीधी सच्ची व्यथा के साथ न जाने किस अर्थ-भरी दृष्टि से अपनी हृदयहीन पत्नी को देखता हुआ व्रजभाषा का एक महाकवि और उसके साथ ही एक महान् मनुष्य भी हिन्दी संसार को सूना कर गया। उसी की अमर स्मृति का यह आयोजन सभी साहित्यिकों को स्वीकार होगा—अवश्य होगा।

मथुरा
१-१०-४०

सत्येन्द्र

विनय

हु० त० १

१

तिहारो को पावै प्रभु, पार।
बिपुल सृष्टि नित नव विचित्र के, चित्रकार आधार।
मकरी के सम जगत-जाल यहि, सृजत और विस्तारत।
कौतुक ही में हरत ताहि पुनि, वेद-पुरान उचारत।
जग में तुम, औ तुम मे सब जग, बासुदेव अभिराम।
सकल रंग तन बसत आपके, याही सों घनश्याम।
परम पुरुष तुम प्रकृति-नटी सँग, लीला रचत अपार।
जग-व्यापन सों विष्णु कहावत, अचरज तउ अविकार।
जितने जात समीप, दूर अति होत जात तव ज्ञान।
'सत्य' क्षितिज-सम तरसावत नित विश्वरूप भगवान॥

—जनवरी १९१७

२

निरखत जित तित ही तुम व्यापक ।

भुवि सों नभ लौं, सकल पदारथ कार्य कुसलता-ज्ञापक ।
सन्ध्या-प्रात रैन-दिन षट ऋतु, क्रम सों सब चुपचाप ।
आवत-जात जगत-अभिनय-थल, अविकल अपने आप ।
गिरि उत्तुग शृङ्ग नभ चुम्बत, प्रकृति मनोहर वेश ।
हिम-मंडित रविकर-रञ्जित नित, करत उमंग अशेष ।
शस्य श्याम अभिराम क्षेत्र चहुँ, सजल सरित-सर पावन ।
मलयज सीतल हीतल सुखप्रद, धीर समीर सुहावन ।
सुभग स्वच्छ स्वच्छन्द द्रुमावलि, नम्र लता मृदु काया ।
अचरज सरसावत, हरसावत, दरसावत तव माया ।
रवि शशि आदि दारुयोषित सम, करत स्वकाज निरन्तर ।
अद्‌भुत अमित परत नाहिं तामे, तिल भरि हू कौ अन्तर ।
अकथ प्रदर्शन पुण्य पंक्ति मे, नित नव नाचन हारे ।
विहँसत अधर प्रमोद चमत्कृत, चंचल चारु सितारे ।
जगमगात प्रति पल मुख-मण्डल, अनुपम परम पुनीत ।
गावत सत अव्यक्त सुध्वनि सों, विश्वरूप, तव गीत ।।

—पौष १९७३

३

को गुन अगम थाह तव पावै ।

विश्वरूप अद्‌भुत अगाध अति, अनुपम किमि कहि जावै ।
रोम-रोम ब्रह्मांड ग्रथित रवि, अनगिन ग्रह, ससि तारे ।
भ्रमत धुरी अपनी-अपनी पै, निसि-दिन न्यारे-न्यारे ।

घूमत सकल चन्द्र मण्डल में, करत निरन्तर ज्योती।
इक आकरसन शक्ति डोरि में, मनहुँ पिरोये मोती।
फूल-भरी मनहरी हरी सिर सारी रसा विराजै।
उडुगन रुचिर नभस्थल प्रतिकृति प्रिय तिह मधि जनु भ्राजै।
कवहुँ सघन घन नित नूतन तन, धावत द्रुत दरसावत।
विद्युत् दमकत तिन ललाट सो, श्रम सीकर बरसावत।
मदमाती रसवती सरित कहुँ, रसनिधि अङ्क मिलाई।
प्रकृति रम्य पुनि ऋतु-परिवर्त्तन, चहुँ दिसि छबि छिटकाई।
होत विज्ञ बाचाल मूक, लखि गति, रहस्य-रस-रॉची।
भगवन्, 'नेति-नेति' तव कीरति, लसै अखिल जग सॉची॥

—अक्टूबर १६१६

४

कमल नयन, भुजँग शयन, सुजन अभयकारी।
करुनामय दीनबन्धु, पावन प्रिय प्रेम-सिन्धु,
भक्तन-मम मोद भरन, सतत सौख्यकारी।
असरन जन निरत सरन, दारिद दुख दुन्द दरन,
मंजुल मर्याद थाप, सुभ स्फूर्ति कारी।
जग-जागृति मूल आप, उन्नति करि हरत ताप,
रचि-रचि साधन अनूप, प्रबल शक्ति धारी।
सब विधि तुम पितु स्वरूप, अखिल विश्व-भव्य भूप,
तजिकैं सब भेद भाय, जग के उपकारी।
जागै अरु जगमगाय, नव जीवन सत्य पाय,
सकल भारतीय जाति, विनय ये हमारी॥

—चैत्र १६७२

५

दया ऐसी कीजे भगवान।
जासो हिन्दू जाति करै सब प्रेम-गंग असनान।
सीतल रस परसत बस याकौ हीतल ताप विनासै।
हरे सघन कलि-कलुष-आवरन पावन भाव विकासै।
जब जातीय अभ्युदय-सूरज प्रतिभा-प्रभा जगावै।
निज कर चंचल तार तरंगनि छेड़ि हृदय लहरावै।
तब हिन्दी भाषा मे हम सब मिलि भैरवी अलापै।
चरचे कर्म-योग चन्दन की तिलक अनूपम छापै।
विलसे मोद लसे नित नव से आत्म-भाव संचारैं।
धर्म-ध्वजा गहि जगत मनोहर सत शिक्षा विस्तारैं॥

—वैशाख १९७२

६

जय जय जयति शक्ति महारानी।
तारा तरणि तारणी माया नारायणी भवानी।
दुर्गति हारिनि दुरित निवारिनि जग जन अक्षर-आसे।
लोक-पालिनी सौख्य शालिनी कृत-वर-विजय-विकासे।
कान्ति, कीर्त्ति, धृति, मेधा तुष्टी पुष्टि दया रुचि रूपे।
शान्ति, क्षान्ति, ऋधि सिद्धि शुद्धि सत श्रद्धा मुक्ति अनूपे।
सत रज तम त्रय गुनसो भूषित अजरे अजे अनन्ते।
जग अगोचरे शिवे सनातनि ब्रह्म-विभूति अचिन्ते।
तव पद प्रेम विरत यह भारत परम दीन, बल नाहीं।
मणि बिन फणि, जल-हीन मीन सम अति निस्प्रभ जगमांहीं।

सहज सदय तुम जननि सदां की, याकों अस वर दीजै।
जगमगाय जासो नव जीवन यहि मधि, रिपुदल छीजै।
मानव-उचित-आत्म-गौरव सो यासु हृदय लहरावै।
पालै नित कर्त्तव्य सत्य यह निज अभिमत फल पावै ॥

७

ॐ जयति जयति जननी—
अमल-कमलदल-वासिनि, वैभव-विपुल-विलासिनि।
नितनव-कला-विकासिनि, मुद मंगल-करनी।
भुवन विदित गुन रासिनि, सु-मधुर मंजुल भासिनि।
निज जन हृदयोल्लासिनि, श्रुति पुरान बरनी।
दारिद दुख दल नासिनि, उर उत्साह प्रकासिनि।
शान्ति सतत अभिलासिनि, त्रिभुवन मन हरनी ॥

८

जै जै मगलमयी भारती, अखिल भुवन की बानी।
अनुपम अद्भुत अमल प्रभा, जिह सकल जगत छहरानी।
ब्रह्म-विचार-सार मे नित रत, आदि-शक्ति महारानी।
विश्वव्यापिनी श्रुति अलापिनी, सुखद, शुद्ध कल्यानी।
ब्रह्मचारिनी, वीनधारिनी, दयामयी, शुभ-दैनी।
नवल कमलदल आसन राजत, नवल कमल दल नैनी।
जगमगात मंजुल मुखमडल, जगत पुनीत प्रकासा।
जासो विविध अविद्या तम को होत तुरन्त विनासा।
ऐसी वरदे शक्ति मुक्ति दे, अहो शारदे माई।
करत विनय तुमसो हम राव यह स्वीकृत करु हरसई।

तुम ही हो मा ! सकल भाँति सो, या भारत की आशा।
प्रगटैं हृदयभाव कहु कैसे बिन बानी बिन भाषा।
जासों भारति ! भारत-जन की रसना सदा विराजो।
ऐसे दिये बिसारि देवि ! क्यो ? मुदित दया निज साजो।
जग के और और देसनि हित जैसी तुम सुखदाता।
जानि स्वजन भारत हू कों, तिमि द्रवहु भारती माता।
जबलौं भारत देश विश्व मे जीवित नित मन भावै।
तबलौ नाम भारती अविचल अजर अमर छवि पावै।
आवहु आवहु शीघ्र शारदे ! वृथा विलम्ब न कीजै।
या भारत की दीन दशा लखि क्यो नहिं हीय पसीजै।
बिगरयो कछु न यहाँ सुनि अजहूँ हरहु हियो अँधियारो।
स्वागत स्वागत जननि तिहारो पुनि निज भवन सँवारो।
सहृदय सुभग सरसता सब के हृदय माँहि सरसावो।
सुमति-प्रभाकर की पुनीत प्रिय सुखद प्रभा परसावो।
हृदय हृदय मधि होइ प्रफुल्लित नवल कली अभिलाखे।
मन मिलिन्द नित गुञ्ज-गुञ्ज कर निज अभिमत रस चाखे।
नित जातीय समुन्नति हित मे सकल सुजन अनुरागे।
भेद भाव तजि निरखे शोभा निज-निज निद्रा त्यागे।
कार्य्य कुशल हो सकल भाँति हम निज कर्त्तव्य विचारें।
वर्तें प्रेम परस्पर सब सो प्रेमभाव संचारें।
परम सौख्यप्रद होइ देश यह ऐसी सुदया कीजै।
तुव चरनन में निरत रहे मन 'सत्य' रुचिर वर दीजै ॥

—वैशाख १९७४

६

जयति जयति जननी।
प्रभु-पद-पद्म प्रभासिनि, ब्रह्म-कमंडल वासिनि,
शंकर-सुयश विकासिनि, कलि-कलमप-हरनी।
प्रकृति छटा सरसावनि वर विनोद बरसावनि,
सुर नर मुनि हरसावनि, मुद मंगल करनी।
सहृदय हृदय विहारिनि, धर्म प्रभा विस्तारिनि,
निज-जन-दुरित निवारिनि, नित तारनि तरनी।
हिम-पट जवै उघारति, अनुपम शोभा धारति,
भारत-भूमि उधारति, सुन्दर-सुख-भरनी।
मधुर पियूष लजामिनि, सघन-महीधर-दामिनि,
मञ्जुल मनोभिरामिनि, दारिद-दुख-दरनी।
शेष महेश विशारद, शुक सनकादिक शारद,
सत्य-सुखद-नित नारद, कीर्त्ति कथा बरनी॥

१०

जयति जयति बल अप्रमेय, दानव-दल-गंजन।
जयति जयति श्री आञ्जनेय जग-जन-मन-रंजन।
जयति कौशलाधीश-दूत-पुंगव अति पावन।
जय उत्साह अकूत कीश यूथप मन भावन।

जय जयति अभंजन सम प्रबल प्रतिथल निज संचार कर।
जय कलित कुंडलाकार कृत शीर्ष बलित लांगूल धर ॥१॥

जय केशरी-कुमार सतत निसकाम सहायक।
महावीर रघुबीर राम के साँचे पायक।
जय लछिमन प्रिय प्रान उबारक जग उपकारक।
कठिन धर्म-संकट मधि आरज कुल उद्धारक।

जय कार्य-परायन सकल विधि, अविचल प्रन अनुपम अमद।
नित कृत पारायन सुभग सुचि भक्ति भाव विद्या बिसद ॥२॥

जय असोक वन जाय सीय उर सोक निवारक।
जय त्रिलोक मधि रामचन्द्र कीरति विस्तारक।
जय समाज साम्राज्य नीति के विज्ञ विलच्छन।
जय दशकंधर-मान-मथन कर बुद्धि विचच्छन।

जय जय कपि-कुल-आनँद करन लाँघि अतुल जलनिधि गहन।
जय जयति बिभीपन-मन-हरन कृत सुवरन-लङ्का दहन ॥३॥

जयति जितेन्द्रिय वीर ब्रह्मचारी नयनेमी।
जय गद्गद् प्रेमाश्रु बहावन पावन प्रेमी।

जयति कर्मयोगी थिर-चित धृत धीरज प्रति पल।
जयति निराशा उदधि उद्य आशा प्रकाश-थल।

जय जयति निराश्रय श्रयद् नित सब प्रकार तारन तरन।
जय अखिल आर्य इतिहास की मर्यादा पुष्टीकरन ॥४॥

जय अगर्व अपु तबहुँ दनुज दल गर्व प्रहारी।
जयति रुद्र अवतार किंतु तव प्रकृति पियारी।
जगमगात तव तेज जगत जग अजहु विराजत।
सुयश प्रभाकर प्रभा निरन्तर त्रिभुवन भ्राजत।

जय राम नाम पकज प्रथित प्रिय पराग लोभी भ्रमर।
जय निसङ्क सद्गुन प्रथित भक्तमाल सुम्मेरुवर ॥५॥

जयति साम सॉगीत गीत के सुन्दर गायक।
सत आचार विचार सुदृढ़ श्रुति सेतु विधायक।
जय प्रभु कारज अचल भार मन मुदित उठावन।
मन वच क्रम सो सकल भॉति करि पूरन लावन।

वरु कोटि विघन बाधा परैं करतव पथ मे तउ अभय
जय यत्नशील सब स्वार्थ तजि करन हेतु प्रभु अभ्युदय ॥६॥

किटिकिटाय निज दंष्ट्र भीम मूरति जब धारत।
हॉक संग "श्रीराम जानकी जय" उच्चारत।
अट्टहास युत प्रबल चरन धरि धरनिहि चॉपत।
कसमसात कूरम सहसानन दिग्गज कॉपत।

सुनि गगन भेदनी रन भयद कपि गर्जनि तर्जनि विकट।
जिय संक खात घननाद से सिथिल होत उद्भट सुभट ॥७॥

विजय मिलत दुर्बल जन हूँ को निश्चय रन मे।
भूत प्रेत बाधा करि सकै न वाधा मन मे।
ग्रह गृहीत भय भीत हृदय उल्लास विकासै।
विफल यतन अरि होत राज सत्कार प्रकासै।
सत डरत दुष्ट दल वरु प्रबल सकल रोग जग के जरत।
जब दास दुःख द्रुत द्रवित चित दयादृष्टि मारुति करत ॥८॥

२०-११-१९१३

११

श्री जगदीश।
फेरो प्रभो, न यों टरकावो, वैसे सब के ईश।
बहुत दिना मे खबर लई है, अब तो रस बरसावो।
सत्य सरसता कौ नित नूतन, सबको स्वाद चखावो॥

उपालम्भ

उपालम्भ

१

माधव आप सदा के कोरे।
दीन दुखी जो तुमकों यॉचत सो दानिनु के भोरे।
किन्तु बात यह, तुव स्वभाव वे नैकहु जानत नाहीं।
सुनि-सुनि सुयस रावरौ तुव ढिंग आवनको ललचाहीं।
नाम धरै तुमकों जग मोहन ! मोह न तुमको आवै।
करुणानिधि तुव हृदय न एकहु करुणा बुन्द समावै।
लेत एक को देत दूसरेहि दानी वनि जग माहीं।
ऐसो हेर फेर नित नूतन लाग्यो रहत सदाहीं।
भॉति भॉति के गोपिन के जो तुम प्रभु चीर चुराये।
अति उदारता सों लै वेही द्रोपदि कों पकराये।
रतनाकर कों मथत सुधा को कलस आप जो पायो।
मन्द-मन्द मुसकात मनोहर सो देवन कों प्यायो।
मत्त गयन्द कुवलया के जो खेल प्राण हर लीने।
वड़ी दया दरसाइ दयानिधि सो गजेन्द्र को दीने।
करि के निधन वालि रावण को राजपाट जो आयो।
तहॅ सुग्रीव विभीषण को करि अति अहसान बिठायो।
पुंडरीक को सर्वनास करि माल मता जो लीयो।
ताको विप्र सुदामा के सिर कर सनेह मढ़ि दीयो।

ऐसी 'तूमा पलटी' के गुन नेति नेति श्रुति गावैं।
सेस महेस सुरेस गनेसहु सहसा पार न पावैं।
इत माया अगाध सागर तुम डोबहु भारत नैया।
रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु में भैया भैया।
या कारन जग मे प्रसिद्ध अति 'निबटी रकम' कहाओ।
बड़े-बड़े तुम मठा धुंआरे क्यों साँची खुलवाओ।।

—ज्येष्ठ १९७

२

माधव अब न अधिक तरसैये।
जैसी करत सदा सो आये, वुही दया दरसैये।
मानि लेउ, हम कूर कुढगी कपटी कुटिल गँवार।
कैसे असरन-सरन कहो तुम जनके तारनहार।
तुम्हरे अछत तीन तेरह यह देस दसा दरसावै।
पै तुमको यहि जनम धरे की तनकहु लाज न आवै।
आरत तुमहि पुकारत हम सब सुनत न त्रिभुवन गई।
अँगुरी डारि कान मे बैठे धरि ऐसी निठुराई।
अजहुँ प्रार्थना यही आपसों अपनों विरुद संवारौ।
सत्य दीन दुखियन की विपना आतुर आइ निवारौ।।

—आषाढ़ १९७२

३

माधव तुमहुँ भये बेसाख।
वुही ढाक के तीन पात हैं, करौ क्यो न कोउ लाख।
भक्त अभक्त एकसे निरखत. कहा होत गुन गायें।
जैसो खीर खवायें तुम को वैसोहि सींग दिखायें।
सवै धान बाईस पसेरी. नित तोलन सों काम।
वलिहारी, नहिं विदित तुम्हें कछु ऊँच नीच को नाम।
वे-पैंदी के लोटा के सम, तव मति गति दरसावै।
यह कछु को कछु काज करत में. तुमहिं लाज नहिं आवै।
जगत-पिता कहवाय. भये अब ऐसे तुम बेपीर।
दिन दिन दुगुन वढ़ावत जो नित द्रोह-द्रोपदी-चीर।
जुगकर जोरि प्रार्थना ये ही निज माया धरि राखौ।
सत्य दीन दुखियनु के हित कों सदयहृदय अभिलाखौ॥

—चैत्र १९७३

४

भयो क्यो अनचाहत को संग।
सब जग के तुम दीपक मोहन, प्रेमी हमहुँ पतंग।
लखि तव दीपति-देह-शिखा में निरत विरह-लौ लागी।
खिचति आप सों आप उतहि, यह ऐसी प्रकृति अभागी।
यदपि सनेहभरी तव बतियाँ, तउ अचरज की बात।
योग वियोग दोउन मे इकसम नित्य जरावत गात।
जब-जब लखत, तबहिं तव चरनन, वारत तन मन प्रान।
जासों अधिक कहा, तुम निरदय, चाहत प्रेम-प्रमान।

सतत घुरावत ऐसो निज तन, अन्तर तनिक न भावत।
निराकार ह्वै जात यहाँ लौं, तउ जन को तरसावत।
यह स्वभाव को रोग तिहारो हिय आकुल पुलकावै।
सत्य बतावहु, का इन बातनि, हाथ तिहारे आवै॥

—आषाढ़ १९७

५

मोहन, अजहुँ दया हिय लावौ।
मौन-मुहर कबलों टूटेगी, हरे! न और सतावौ।
खबर वसंतहु की कछु तुम को, विरुद बानि बिसराई।
ऐसी फूल रही सरसों सी, तव नयनन में छाई।
अचल भये सब अचल, देखिये, सरि से अश्रु बहावें।
सूरज पियरे परे, मोह बस, चिन्तित दौरे जावें।
द्रुम तक हू के दृग नव किसलय रोइ भये अरुणारे।
दारुण देश दशा लखि बौरे ये रसाल चहुँ सारे।
अबला लता कलेवर कोमल कम्पित भय दरसावे।
लम्बी लेत उसास जानिये, जबै हृदय लहरावे।
कारी कोयल कूक कलाकल यदपि गुहार मचावत।
चहुँ अरण्य-रोदन सम सुनियत, कछु न प्रभाव जनावत।
लखियत ना सद्भाव कमल अब कुसुमित मानस माहीं।
कोरी प्रकृति-छटा बस सुन्दर तथा रही कछु नाहीं।
जन्म-भूमि निज जानि, साँवरे, याकौ हित अभिलाखौ।
अर्ध दग्ध जड़ दशा बीच अब अधिक न याको राखौ॥

—फाल्गुन १९७२

६

मोहन ! कब लौं मौन गहोगे ।
निज आंखिन पै धरैं ठीकुरी. कितने और रहोगे ?
तुम देखत-भारत, मानव कुल आकुल छिन-छिन छीजै ।
कहा भयो पासान हृदय तव, जो नहि तनिक पसीजै ।
'रसना' नाम भयो अब साँचो. टेरत-टेरत हारे ।
छुट्यो न तउ तव हृदय कृष्णपन, द्दगसों चले पनारे ।
विपति-ग्राह ने ग्रस्यो विश्व-गज, होन चहत अनहौनी ।
ऐसे समय, साँवरे, सूझी तुम कों आंखिमिचौनी ।
भुवन विदित निज सत गुन तुमने, कहौ कहाँ बिसराये ।
रह्यो स्वभाव यही जो. तौ क्यों करुणासिन्धु कहाये ।।

—वैशाख १९७२

७

अब न सतावौ !
करुणाघन इन नयनन सों, द्वै बुदियाँ तो टपकावो ।
सारे जग सों अधिक, कियो का, ऐसो हमने पाप ।
नित नव दई निर्दई बनि जो देत हमें सन्ताप ।
साँची तुमहि सुनावत जो हम चौकत सकल समाज ।
अपनी जाघ उघारे उघरति बस अपनी ही लाज ।
तुम आछे हम बुरे सही बस, हमरो ही अपराध ।
करनो हो सो अजहूँ कीजै, लीजै पुण्य अगाध ।
होरी सी, जातीय प्रेम की फूँकि, न धूरि उड़ावौ ।
जुग कर जोरि यही सत मांगत अलग न और लगावौ ।।

२६–२–१९१८

८

उठो, अब सोय चुके प्रभु जागौ।
नयन खोलि या जग पालन मे करुणा करि अनुरागौ।
अब के जो दृग मींचि लिये तुम सेस-सयन के माहीं।
अतिशयोक्ति नहि, साँच मानिये, सेस रहै जग नाहीं।
अधिक रुधिर-रञ्जित-वसुधा अब नाथ न देखी जाती।
लेउ समेटि आपनी लीला चहुँ दिसि भय दरसाती॥
महसन बिधवा अरु अनाथ को रुदन सुन्यो नहिं जावै।
पै तव हृदय, न जाने क्यो, अब दया न भगवन् आवै॥

—कार्तिक १९७

९

परखो प्रेम किये को आवे।
कहा कहे मन मूढ़ बड़ो यह जो तुम्हरे ढिंग जावे।
होती बात हमारे वस की, कबहुँ न लेते नाम।
करतो चाहे जगत, भले ही कितनौ हू बदनाम।
जो चाहत तुम को निस बासर प्रेम प्रमत्त अपार।
तिनके संग, अनोखौ ऐसौ करत आप व्यौहार।
सुनत रहे जो मुख अनेक सों, अनुभव मे अब आई।
'ऊँची बड़ी दुकान तिहारी फीकी बनै मिठाई'।
तन मन धन सर्वस्व निछावर करें जो तुम्हरे हेत।
तिन के बॅट निर्दयता ऐसी, कैसे दया निकेत।
चितवत जे चकोर से, तुमको लखि पावत आनन्द।
तिन को तुम नित नये जरावत भले भए ब्रजचन्द॥

व्याध, गीध, गज अरु निषाद से पतितन को तुम तारयो।
भुवन-विदित वर विमल आर्य-कुल हमने कहा बिगारयो।
वेद पुरान तुम्हारे जस के, नभ मे महल बनावत।
पै वैसे गुन, छिमा कीजिये, तुम मे एक न पावत।
सोवत सुखद शेष-शय्या पै करत प्रमोद अशेष।
जिए मरे वरु कोउ जगत मे चाहे रहै न शेष।
उठौ देव, अब या भारत कों खोलि युगल दृग देखो।
जासो सत्य बने सब कारज, करै न कोउ परेखो॥

—१९७३

१०

बस, अब नहि जाति सही।
विपुल वेदना विविध भांति, जो तन मन व्यापि रही।
कबलों सहें. अवधि सहिबे की कछु तो निश्चित कीजे।
दीनवन्धु, यह दीन-दशा लखि क्यों नहि हृदय पसीजे।
वारन दुख-टारन तारन मे प्रभु तुम वार न लाये।
फिर क्यों करुणा करत स्वजन पै, करुणानिधि अलसाये।
यदि जो कर्म-यातना भोगत, तुम्हरे हू अनुगामी।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी।
अथवा विरद-बानि अपनी कछु, कै तुमने तजि दीनी।
या कारण, हम सम अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी।
वेद वदत गावत पुरान सब तुम त्रय ताप नसावत।
शरणागत की पीर तनिक हू तुम्हें तीर सम लागत।
हम से शरणापन्न दुखी को, जाने क्यों बिसरायो।
शरणागत-वत्सल सत योंहीं कोरो नाम धरायो॥

११

पालागन करजोरी, नाथ ऐसी खेलो न होरी ॥
गरब गुमान गुलाल जगत में कैसो मगन उड़ायो।
घन अज्ञान अबीर छयो चहुँ तासों कछु न लखायो।
करो यह क्यों बरजोरी ॥१

अहो कुरीति कुंकुमा को अब क्यों प्रभु मूँठि चलावौ।
भरि पाखंड प्रबल पिचकारी रंग जंग बरसावौ।
कलह की केसर घोरी ॥२

दई मोह माजूम निरदई भ्रम की भाँग खवाई।
हरी 'हरी' सुधि बुधि जग ही की 'भडुआ भगति' मचाई ॥
लाज की गागरि फोरी ॥३

अपनी-अपनी ढपली पर अब रसिया बहुत गवाये।
चेत करो नहिं तो पछितैहो कौन नसा मधि छाये।
लिये सत कीरति कोरी ॥४

स्वदेश भक्ति

स्वदेश भक्ति

१

बन्दौं मातृभूमि मन-भावनि।
जासु विमल जल मृदु फल बलप्रद,
मलयज सीर समीर सुहावनि।
कलित ललित संकुलित नवल तृन,
चमत्कार निज चहुँ चमकावनि।
अति रमनीक नीक सुठि उज्जल
चारु चाँदनी चटक लजावनि।
अकथ अमित कुसुमित द्रुम दल-सी,
प्रकृति प्रमोद प्रेम सरसावनि।
मंजुहासिनी मधुरभासिनी,
सुख-विकासिनी, वरदा पावनि।
तीस कोटि मुख अट्टहास करि,
दुरजन-हिय अति भय उपजावनि।
साठि कोटि भुज गहि असि तीखी,
तरलित द्युति दस दिसि दमकावनि।
को कहि सकत तोहि अबला मा!
तू सबला रिपु-जिय धरकावनि।

निज भुजबल खल-दल संहारनि,
जन तारनि, कलि-कलुष नसावनि।
परम ज्ञान युत धरम-मरम, सब,
करम तुही, जनमन पुलकावनि।
बाहु शक्ति, उरभक्ति तुही,
तन-प्राण पुण्यमय ज्योति जगावनि।
दुरगा तुही बसति प्रति घट-मठ,
दस आयुध धरि धीर धरावनि।
कमला, अमल कमलदल वासिनि,
वानी, विद्यावर बरसावनि।
अजर अतोल लोल सुखमासनि,
अमर अमोल दृश्य दरसावनि।
मोहनि श्यामल सरल उर्वरा,
विश्वविमोहनि, हिय हरसावनि।
आरज धरनि, भरनि पोषणि जग,
सतनारायण-आस पुजावनि॥

१—४—१९०९

२

पूरब पच्छिम घाट चरण मुद मंगल-कारी।
बिन्ध्याचल कटि देस नाभि-सांभर दुख-हारी।
उर सम्मिलित-प्रदेश, बंग, राजस्थल भावत।
मुख-मंडल कशमीर, ग्रीव पंजाब सुहावत।
तपत भानु-नव किरण-माल सुभ सुभग विराजत।
हेम वरण हिम चन्द्र भाल धवलागिरि भ्राजत।

सघन तरुन की अवलि जटिल अति जटा सँवारत।
हिम-मय स्वेत सुरंग सकल भव ताप निवारत।
ब्रह्म श्याम अरु यवन देश युग भुजा पसारत।
मार-उछाहहिं मारि क्रोध परलय परचारत।
हिमगिरि सिर सो गंग पुण्य परवाह प्रवाहत।
सत्यदेव अस शिव-भारत सों आनँद चाहत॥

२३।५।१६०३

३

जय जय सुधि निरत लेवि, अमल सकल जगत-सेवि।
भारत-भुवि जननि देवि, जन उधारिणी ॥ १
सुन्दर सुख-प्रद सुहात, जातरूप रूप जात।
देखि दुरत हू दुरात, दरिद दारिणी ॥ २
तीस कोटि जयति गुञ्ज, मंगल मय रूप-पुञ्ज।
विहरत जग-उर निकुञ्ज कान्ति कारिणी ॥ ३
दरसत आमोद कन्द, सरसत सुखमा अनन्द।
बरसत नित रस अनन्द कष्ट टारिणी ॥ ४
दमनि सोग-रोग भीर, समनि प्रवल पाप पीर।
रमनि जननि धीर वीर, जय प्रसारिणी ॥ ५
तित धरि उज्जल प्रकास, दीपत तव द्युति-उजास।
करि विनोद कौ विकास, हृदय हारिणी ॥ ६
सजल, सफल, सरल अम्ब, सदय हृदय विन विलम्ब।
जप-तप धरमावलम्ब, ब्रह्मचारिणी ॥ ७
षट ऋतु वर विमल पाय, शस्य ,श्यामला सुहाय।
लहरति नित जगमगाय, दुख विदारिणी ॥ ८

मलयज मञ्जुल अतोल, पवन क्रोड़ लै अमोल।
करि करि क्रीडा कलोल, रुज प्रहारिणी ॥ ९
रविकर सज्जित सँवारि, चिर तुषार क्रीट धारि।
बिलसति सन्ताप हारि, बुधि सुधारिणी ॥ १०
असरन कर सदा भरनि, निरखत हिय मोद भरनि।
तारा त्रयताप हरनि, तरणि तारिणी ॥ ११
विदित सुभग श्रुति पुरान, सुर मुनि नर धरत ध्यान।
पद पद प्राकृतिक प्रान—पूर्ति पारिणी ॥ १२
भंजनि कलिकलुष मूल, गञ्जनि भव-व्याधि शूल।
रञ्जनि जन मन सफूल, शोक वारिणी ॥ १३
वीरोचित रखन मान, मैंटति खल दल निसान।
कोमल करलै कृपान. रिपु मँहारिणी ॥ १४
करुणामयि विगति छद्म बसुधा मधि सुधा सद्म।
आरज थल अमल पद्म, भूरि धारिणी ॥ १५
मधुर मधुर मुसिकिरात, हरष हीय ना समात।
टपकत प्रेमाम्बु जात, भय निवारिणी ॥ १६
नय मारग मुदित गवनि. शोभा सुख सिद्धि सबनि।
श्रीपति अवतार अवनि श्रुति बिचारिणी ॥ १७
दया दृष्टि हेरि हेरि. कमले कर कञ्ज फेरि।
काटहु सब बिपति बेरि. शुभ-प्रचारिणी ॥ १८
विद्या बर विनय ऐनि, ललित मृदुल मधुर बैनि।
सत्यदेवि ज्ञान दैनि, काज सारिणी ॥ १९
मात लई शरण तोर, करिके इत कृपा कोर।
हरति ताप क्यो न मोर, हिय विहारिणी ॥ २०

२१–३–१९०७

४

पावन परम जहाँ की. मंजुल माहात्म्य-धारा।
पहले ही पहले देखा, जिसने प्रभात प्यारा।
सुरलोक से भी अनुपम, ऋषियों ने जिसको गाया।
देवेश को जहाँ पर, अवतार लेना भाया।

वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी ॥१

ऊँचा ललाट जिसका, हिम-गिरि चमक रहा है।
सुवरन किरीट जिस पर, आदित्य रख रहा है।
साक्षात् शिव की सूरत. जो सब प्रकार उज्ज्वल।
बहता है जिसके सिर से, गंगा का नीर निरमल।

वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥२

सर्वोपकार जिसके, जीवन का व्रत रहा है।
प्रकृती पुनीत जिसकी निरभय मृदुल महा है।
जहाँ शान्ति अपना करतब करना न चूकती थी।
कोमल कलाप कोकिल कमनीय कूकती थी।

वह मातृभूमि मेरी, वह पितृभूमि मेरी ॥३

वर वीरता का वैभव, छाया जहाँ घना था।
छिटका हुआ जहाँ पर, विद्या का चाँदना था।
पूरी हुई सदा से, जहँ धर्म की पिपासा।
सत्संस्कृत पियारी, जहँ की थी मातृभाषा।

वह मातृभूमि मेरी वह पितृभूमि मेरी ॥४

५

सब मिलि पूजिय भारत माई।
भुवि-विश्रुत. सद्वीर-प्रसूता, सरल सदय सुखदाई।
जाकी निर्मल कीर्त्ति-कौमुदी, छिटकि चहूँ दिसि छाई।
कलित केन्द्र आरज-निवास की, वेद पुरानन गाई।
आर्य-अनार्य सरस चाखत जिह, प्रेम-भाव रुचिराई।
अस जननी पूजन-हित धावहु, वेला जनि कढि जाई।
सुभट सपूत, अकूत साहसी. आरजपूत कहाई।
मातृभक्त सुप्रसिद्ध जगत मधि, प्रिय प्रताप प्रगटाई।
क्यों न जगत अब वीर केसरी, बैठे अस अलसाई।
ऐक्य नखनि सो द्रोह-गयन्दहि भल विदारि रिसियाई।
चकित भयाकुल भारत-भुवि की नासि सकल दुचिताई।
विरचि आत्म-अवलम्बन-आसन मा को तहँ पधराई।
साजि स्वधर्म मुकुट तिह सिर पर दृढ़ता चौर डुलाई।
ईश-भक्ति की छत्र-छाँह करि तजि निज कुमति कमाई।
विजय वैजयन्ती गर डारहु प्रेम प्रसून गुहाई।
अनुभव अमल आरती कीजै मंजुल हिय हरषाई।
प्रिय स्वदेश व्यापार-अर्घ जल, सिंचन करहु बनाई।
जपहु मुदित मन सत्य मंत्र 'बन्देमातरम्' सुहाई॥

६

वन्दौ भारत-भुवि महतारी।
शेष अस्थि पिंजर बस केवल, भययुत चकित विचारी।
रोग अकाल दुकाल सताई जीरन देह दुखारी।
मुरझाई माधवी लता सी, जनु पाले की मारी।
गहरे उष्ण उसास भरति जो, नित नव विपत निहारी।
धूल-धूसरित जाकी झलके अलके स्वेत उघारी।
अञ्चल फटे लटे तन ठाड़ी, सुधि बुधि सकल विसारी।
तदुपरि देश विदेश पुत्र दुख, चिन्ता-व्याकुल भारी।
सोच विचार पगी निसिवासर मन-मलीन हिय हारी।
करत सहानुभूति नहिं कोऊ, यासों जगत मंझारी।
निरालम्ब, धरि हाथ चिबुक पै नयन बहावत बारी।
श्रीपति जन्मभूमि ह्वै कबहूँ, जो श्रीहीन भिखारी।
अन्नपूरणा ताउ व्यथित अति, अन्न दीनता धारी।
शस्य श्यामला बनी वनी सम, जो नीरस भयकारी।
बरनी स्वर्गहुँ सो जो अनुपम, अब मसान अनुहारी।
विस्तारति नित नित अति आरत दसा सके न उचारी।
'अबला' नाम किया जग साँचा, जगमे सकल प्रकारी।
तीस कोटि सुत अछत, दुखी तउ कैसी गति ससारी।
जात लाज ब्रजराज राखिये याकी कृष्ण मुरारी।
सत्यदेव ! अब अधिक न या पै, विपदा जाति सहारी॥

७

जय जय भारत मातु मही।
द्रोण भीम भीषम की जननी, जगमधि पूज्य रही।
जाके भव्य विशाल भाल पै हिम मय मुकट विराजै।
सुवरण जोति-जाल निज करसो तिह शोभा रवि साजै।
श्रवत जासु प्रेमाश्रु पुञ्ज सो, गंग-यमुन कौ वारी।
पद-पंकज प्रक्षालत जलनिधि नित निज भाग सँवारी।
चारु चरण नख कान्ति जासु लहि यहि जग प्रतिभा भासै।
विविध कला कमनीय कुशलता अपनी मंजु प्रकासै॥
स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम अम्ब विलम्ब न कीजै।
प्रिय-स्वदेश-अभिमान, मान, सत ज्ञान अभय जय दीजै॥

२६-२-१९१८

८

जय जय जय स्वतंत्रते प्यारी।
तुव गति, नर मति समझ सकत नहिं, अखिल लोक ते न्यारी।
जो जन अरपत निज तन मन धन सकल तिहारे कारन।
औरहु दूरि छितिज सम, तासों भजत लगावै बार न।
विविधि भाँति के लालच द दे, निज जन मन ललचावै।
ललकत गहन जबै मन वाँछित, ताहि तुरन्त हटावै।
तेरे अग्नि-कुण्ड मे, सहसनु काटि स्वशीस चढ़ायो।
किन्तु रही मुसकात, विमोहनि, नैक मोह नहिं आयो।
यह सब कौतुक कला रचन में तोहि स्वाद कहा आवै।
निज-अनुमोदित सत्य-मार्ग, किन सत्वर जगहि दिखावै॥

जनवरी १९१४

९

देवी मनुष्यते ! अब, वीणा मधुर बजादे !
सुन्दर सुरीला गाना चित-शान्ति का सुनादे।
अज्ञान की अँधेरी, पथ भूल मारा मारा।
ये जग भटक रहा है, इसको प्रभा दिखादे।
भाई सभी परस्पर, ऊँचा न कोई नीचा।
समवेदना के मोहन मृदु मन्त्र को जतादे।
काला कलह का परदा, कृपया उसे हटा कर।
'एकात्मता' का दर्शन, दुनिया को फिर करादे।
नीरस न जाने कब का, मानव हृदय पड़ा है !
प्यारी पियूप-धारा, उसमे बिमल बहादे।
सोती हुई कलाएँ, कविताएँ चारु कोमल।
कौशलमयी उन्हें तू, बस, छेड़कर जगादे।
सच्ची स्वतन्त्रता की ममता की भावनाये।
पावन प्रताप पूरण, इस जग मे जगमगादे ॥

१०

देश के कोमल-हृदय कुमार,
सरल सहृदयता के अवतार।
तुम्हीं हो ऋषियो की सन्तान,
आर्य्य जन जीवन, धन अरु प्रान
भारती गुण गौरव अभिमान,
कीजिये मातृभूमि उद्धार ॥१॥ देश०

ह० त० ३

प्रबल पुनि सज्जनता के सद्म,
प्रेम-पद्माकर के प्रिय पद्म,
सदय सुन्दर सब भाँति अछद्म,
कीजिये नवजीवन संचार ॥२॥ देश०

सभ्यता के शुचि आदि स्वरूप,
मनोरञ्जन प्रतिभा के भूप,
विमल मति पावन परम अनूप,
कीजिये भ्रातृ प्रेम विस्तार ॥३॥ देश०

लीजिये ब्रह्मचर्य्य का नेम,
पालिये अखिल विश्व का प्रेम,
परस्पर होवे जिससे क्षेम,
कीजिये हिन्दी सत्य प्रचार ॥४॥ देश०

देश के कोमल-हृदय कुमार,
सरल सहृदयता के अवतार।
तुम्हीं हो ऋषियों की सन्तान,
आर्य्य जन जीवन धन अरु प्रान
भारती गुण गौरव अभिमान,
कीजिये मातृभूमि उद्धार ॥५॥ दे०

प्रेमकली

गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है।
याही सो अधखिली रही यह प्रेमकली है।

११–८–६९ वि०

सत्यनारायण

प्रेमकली

मंजु मनोरम मधुर सरस सुठि रस-कुसुमाकर।
'प्रेम' सबद अति अद्‌भुत अमल अलौकिक आखर।
करत रुचिर रचना विरंचि जिनकी सुखकारी।
भये होयगे अवसि परम कृतकृत्य सुखारी।
अगम अगाध अपार सबदमय पारावारा।
मनु मथि जग हित सुधा कलस विधि सदय निकारा।
बसीकरन मुदभरन ओघ अघ दरन सदा के।
अकथित अमित प्रभावभरे मनु मन्तर बाँके।
कै साहित्य-रतन-गरभा के उर उजियारे।
निरत जतन करि सुबरन दोऊ रतन निकारे।
खरी खिली कै उर उपवन मे अति अलबेली।
सुरभित सुख-प्रद सरस चुभीली चारु चमेली।
किधौं प्रकास प्रकास-थम्भ को ललाम अविचल।
जगत उदधि मधि भ्रमत पोत-मन बिसराम स्थल।
कै ग्रीसम त्रयताप प्रबल परिताप नसावन।
ललित कलित कसमीर सैल सुखमा सरसावन।
किधौं भेद-पाषान-भेदि नित द्रवत सुधा कौं।
बहति हिलोरति बोरति सुरसरि हिय बसुधा कौं।
जगत हृदय तरु विमल बढ़ावन किधौं निकाई।
ललकि लहलही ललित लता लौनी लिपटाई।

मिलनि सतपुरा बिछुरनि विन्ध्याचल मधि सोहति।
नेह निरमदा नदि निरमल चलिकै मन मोहति*।
भक्ति पीन हरिभक्त मीन जीवन हित जीवन।
स्वाँति बिन्दु के विरह विथित जन पपियन 'पीवन।
किधौ बिरच-बन माली लहि उर लहरि रसाला।
प्रेम-तार निरमयो गुहन मन सुमनतु माला।
सतत अपरिमित गुन-गन पूरित प्रेम प्रथाएँ।
सकत न जाकी थाइ नेम परिमित गुन थाएँ।
रस रतनाकर प्रेम रतन मन जबहि समाये।
बनत लाज कुल कान काँच करसौ छिटकाये।
मंजुल उर नभ होत प्रेम मय मित्र प्रकासा।
बिलसत लखि नहि परत नियम खद्योत बिकासा।
जा सन उत्तेजित ह्वै नर स्वधर्म अनुरागत।
नित स्वदेश हित प्रमुदित निज तन तृन सम त्यागत।
उदाहरन बहु मिलत अनुकरन जोग करन के।
निरखहु नयन उघारि चरित वर बरन बरन के।
जा बस निरगुन निराकार अज अलख निरंजन।
बनत सगुन साकार करत निज जन मनरंजन।
त्रिविध ताप बहु बिथा भरयो जग लवन समुद सम।
तास उपर गत प्रेम मधुर जल स्रोत अनूपम।

---

* अथवा—विन्ध्य बिरह सतपुरा असाहस गिरि मधि सोहत।
नेह निरमदा नद निरमल सुर मुनि मन मोहत॥

हृदय पटल सों उमगि-उमगि नित आपुहिं आपा।
परम प्रफुल्लित करत हरत भव-भय-सन्तापा।
हरि-रति-रस सरबस जिनकी नस-नस मे व्यापक।
सो दुरमति गति लोपी गोपी प्रेमाध्यापक।
कोऊ बौरा कहत मगन मन प्रेमी जनकों।
अहो भाग्य जो लहत प्रेम मय बौरापन को।
जासु पाइ परसाद लहत जीवन फल नीके।
चाखत अनुपम अमित स्वाद आनन्द अमी के।
बरबस खैंचत जगत मनहि जो नित मटकीलौ।
जगत चित्त चुम्बक सनेह चुम्बक चटकीलौ*।
अति करकस अति कठिन लोह मन कैसोउ दरसै।
सहजहिं सुबरन होत प्रेम पारस के परसै।
होत न सोभा कतहुँ नेह सो सूने उर की।
स्वीकृत होइ न सनद कबहुँ जो बिना मुहर की।
विविध भावना परिधि केन्द्र बस एक प्रेम है।
मिलत जहाँ सब आय निरत सुठि एक नेम है।
त्रय तापित उर लहलहात नन्दन सम सुन्दर।
प्रकृति वसुमती जबै अधिवसत प्रेम पुरन्दर।
निरत विचारन जोग रुचिर उपदेस यही उर।
परमेसुर मय प्रेम प्रेममय नित परमेसुर।

---

* अथवा—बरबस खैंचत जगत मनहि जा चित्त पियारौ।
जगत चित्त चुम्बक सनेह चुम्बक मतवारौ॥

प्रकृति तामरस लसत विविध रस थलनि मनोहर।
परि अनुपम छवि धरत भरत जब प्रेम सरोवर।
अस्तु सकल संसार पदारथ जहँ बहु दरसत।
बस्तु यही है जासो मन मनको आकरसत।
त्रिभुवन पावन परम मञ्जु भावन सनेह रस।
विपुल भाँति के धरत आभरन स्वभावना बस।
करनफूल नथ खौरि आदि जिमि रूपक जानौ।
सब मे सुवरन एक वरन मनहरन समानौ।
मणिमय दीपक दिव्य प्रभाकर परम सुहाई।
बरन बरन के कांच लेत पै तिहि अपनाई।
मन्द-मन्द ज्यो बहत पवन पावन मलयज कुल।
गहत सुवास कुवास परसि थल मञ्जु अमञ्जुल।
अटल छटा परिपूर्न पटल को पुहुप पियारौ।
पै कंटक बस गहन अकंटक नाहि सुखारौ।
प्रेम परम सुच सरस सुखद सुखमामय पग-पग।
पै कराल करवाल धार सम सहज प्रेम मग।
प्रेम ऽरु प्रन सम्बन्ध परसपर आनँद राँचौ।
होत न प्रन सो हीन कबहुँ जो प्रेमी साँचौ।
को लघु को दीरघ प्रेमिनु मे रहत निरन्तर।
प्रेम परन अन्तर सौ लखियत तिनको अन्तर।
नेह बसत उर, नसत सकल मत मोह बिताना।
पिघल जात पाषान जीय नवनीत समाना।
करन प्रेम को बसीकरन अच्युत आराधन।
चहियतु अबिघन अबसि सघन साहस मय साधन।

भुवन विदित अभिराम अचल निष्काम तासु गति।
प्रथित पुरातन प्रचुर पुण्यमय प्रिय प्रन कीरति।
बरु तन सुन्दर सगुन सरल सब भाँति अनूनौ।
दीप-सिखा सम करत प्रकास न सनेह सूनौ।
ज्यों-ज्यों अविकल तपत जपत प्रिय गुन पल-पल मे।
त्यों-त्यो निखरत सनेह सुवरन विरह अनल मे।
प्रेम-पयोनिधि धसि अवगाहत हिय हरसावै।
किन्तु बिरह-बडवानल सौं अति सो घबरावै।
कहन सहज परि गहन प्रेम-पथ निवहन सहज न।
भ्रमत भरति जग विषम विषय विप भोइ मनुज मन।
बँटत जहाँ मन विविध विषय सत मुनियनु गाई।
यह स्वाभाविक बात परति सब मे कठिनाई।
सहज सरल यह सुलभ सत्य नहि दुरयो काहु सन।
फिर क्यों कवियनु क्रियो बिथामय या को बरनन।
साँची कहनावति 'जाकैं नहि फटे बिबाई।
समझ सकत सो कैसे कहिए पीर पराई"।
प्रेम योग को होत जबै कछु काल व्यतिक्रम।
डूबत विकल बियोग बाबरी जन मन सभ्रम।
जब साधारन कारन जग जन मत श्रम पाई।
कहा आचरज परै प्रेम पथ मे कठिनाई।
कहौ कहाँ को न्याउ निरन्तर अन्तर करिवौ।
जहाँ कठिनता परै तासु मग पाँउ न धरिवौ।
बिपुल दूर सौ परमानत अस कायरताई।
"अपने मुख में ग्रास विना कर उठे न जाई"।

जागो अभिमत मिलै अवसि चहियतु सो धारो।
स्वयं मनुज निज भाग अभाग सँवारन हारो।
बरु जहाज डिगिमिगै बात बस विचलन छिन को।
लखियत नित ध्रुव भाग सुई उत्तर दच्छिन कों।
तथा जगत व्यवहार करत लहि विथा झकोरे।
प्रेम दिसा सों निरत निरन्तर मनहि न मोरे।
दुविधा हू में नित चहियतु सनेह प्रानी में।
तजत न निजगुन इकछिन ज्यों चकमक पानी में।
प्रेम देव हू यदि उमग में अपु चितु लावैं।
निज गुन पारावार बरनि तउ पार न पावैं।
खिलत अमल कल कमलकली सु-पराग नसतु है।
पुनि ता हित अनुराग अली-उर नाहिं बसतु है।
प्रेम-पुहुप उघरत प्रियतम रज रहस पराने।
मोद भरत आदरत न तिहि रस-भेद-सयाने।
नेह निकाई अप्रगट रस महिमा अधिकाई।
जग जिय भाई कवियतु गुनियतु मुनिमन भाई।
उठति भावना विविध अनूपम जिन रुचिराई।
को नर ऐसो अधम सकै जो तिन बिसराई।
अमित राग अनुराग कला कविता मनमोहनि।
लहरि उठति स्वच्छन्द सुखद सुन्दर सुठि सोहनि।
नैननि भरि इक बेर जबै कहुँ लखत सनेही।
होत प्रफुल्लित रोम-रोम आनँद सों देही।
सहस नैन ह्वै लखत तऊ नित दरसन भूखे।
बैन-सुधा-सर न्हात गात तउ लागत सूखे।

जो आँखिन की ओट कहूँ ह्वै जाय पियारो।
व्यापति नस-नस विरह बनत तन सुधि मतवारो।
दिव्य प्रभा पूरन पल-पल चंचल नभ तारे।
निकसत चमकत दुरत कबहु करि निज उजियारे।
चारु चाँदनी बिलसति में उमगति नित छाती।
लसत नखत नभ जनु प्रिय पाती तन पुलकाती।
चहचहात पछीगन जनु कोउ राग अलापत।
सनसनात चलि पवन मनहु प्रियतम सुधि लावत।
सुनत कान दे ताहि जानि सन्देश सुहावन।
पठवत कबहुँ मराल मधुप धाराधर धावन।
तरु तन लगि अलबेलि वेलि लचि-लचि लहराती।
बिरही दुख सों दुखी मनहु विह्वल बिलखाती।
गिरत सुमन गन कबहुँ पवन सन सुन्दर दरसत।
लसत यही जनु अश्रु विन्दु तिन कर वहु बरसत।
जे असोक के विटप लगत तेऊ सोकाकुल।
सन्तापित तन लखियत सकल चराचर को कुल।
अखिल जगत की जननि प्रकृति दारुण दुख छैनी।
नाना दृश्य दिखाइ देति धीरज सुख ऐनी।
सकल विश्व आमोद पुंज उर कुंज पूर्ण भरि।
विरह जनित जो कष्ट तासु तुलना न सकैं करि।
कठिन लभ्य आनन्दकन्द इक ओर प्रेम पद।
अपर ओर अति सहज स्वार्थ मग मदमय दुखप्रद।
खुले जुगल मग चलो चलावहु जहँ जिय भावै।
निज-निज रुचि अनुसार जीव जग सुख-दुख पावै।

चित्र विचित्र पवित्र प्रेम प्रन कर मन भावन।
सुनत परम रस ऐन बैन पपिया के पावन।
तृन समूह नहिं गिनत सकल निज तन मन धन है।
पूरन प्रेमी परमासय पपिया को प्रन है।
प्रेम प्रथा अनुकरन जोग थिर चित चातक की।
जिहिं सुनि छाती परै न तन प्रवसन पातक की।
कैसो जाकर अहा अटल अविचल अद्‌भुत प्रन।
भरे सरित सर समुद तऊ नित यांचत जो घन।
भूरि उपल वरु परहि धूरि उडियत पाखन की।
तब हू निहचल चाह चित्त स्वाँती चाखन की।
पूरन प्रेमिनि मीन जगत जाकी रति जानी।
प्रानहीन, पै उर रस प्रीति न तासु सिरानी।
विसम बिसैलो जब रिस करि निज डॉकहि मारै।
परम कठिन सो कठिन सहज ही दारु बिदारै।
सो षटपद गदगद उर निरबिस सरस सदाँही।
मुदित पदम मुख कढ़ि न सकै गुंजत तिहि माँही।
निरख्यो प्रेम प्रभाव पूरि रह्यो जग जीवन मे।
लगु जासौ मन मन्द सुरस छकि छकि पीवन मे।
यही जगत मे जनम धरन को सुन्दर फल है।
जा बिन जीवन धरम करम चतुरई बिफल है।
यह जग के कछु अपढ़ पसुन की प्रम कहानी।
मोद मई छवि छई प्रगट नहिं जाइ बखानी।
जहँ बिसेस विद्वान सभ्य नर जाति सुहावन।
प्रेम-प्रथा विस्तरित विमल चहियत तहँ पावन।

विषम विषय विष सरिस कठिन हिम रासि सताये।
रहत न प्रेम प्रसून प्रफुल्लित बिन कुम्हिलाये।
करत संग पय जलहि, रंग निज दिय रस भीनौ।
बारि बारि निज तन सनेह को परिचय दीनौ।
"मैं तैं" सो मुख मोरि नेह निधि जब अस पावै।
को नर ऐसो उदासीन जो नहिं हुलसावै।
यदि कोउ चाहत निरमल नेह रसायन पारौ।
बिरह ताप सो जात चपल चित पारद मारौ।
प्रगट बर्ननातीत सकल जग जीय समानी।
प्रीति रहस रसरीति मूर परतीति प्रमानी।
जहाँ पुहुप की बास तहाँ मधुकर गुञ्जारैं।
जहाँ प्रेम रस आस रसिक अपु तहाँ पधारैं।
घुरत घुरत जब जुग मन गुन को गाँठ हिरावै।
अद्वितीय सुखप्रद सुभाव सो प्रेम सुहावै।
जबै हृदय में प्रेम चाट चटपटी जगति है।
तजति भजति उर आंट बार ना तनक लगति है।
श्रम औ निज कर्त्तव्य धार मुद मंगल देनी।
जब सनेह सरसुती मिलत तब बहत त्रिबेनी।
यही कसौटी बिस्व मांहि जन मनहि कसन की।
यह ही साँची वस्तु आत्मबल दैन असन की।
जगत मनहिं बांधन हित यह ही नरम शृङ्खला।
यही मदन-मोहन मोहन की सोहन सु-कला।
यह आकरसनि सकति भगति जो कोऊ धारै।
निज नैनन सों स्वयं ब्रह्मपद पदम निहारै।

रस सरसावत छवि दरसावत हिय हरसावत।
वर विनोद बरसावत प्रियतम पद परसावत।
सुलभ सफलता द्वार देस सेवक गुनियनि को।
सुधाधार साहित्य मधु-व्रत सत कवियनि को।
विरह ताप संतापित जन को सुखद रसायन।
हार मन को सहसबाहु साहस वरदायन।
अटल मुक्ति सोपान मोक्ष के अभिलासी को।
अभिमत सुफल प्रदान जनम के हत आसी को।
मुनियनि को पद पद सुख प्रद बर बिसद बिरागा।
हरिजन षटपद को श्रीपति पद पदम परागा।
अगम अनिरवचनीय परे जासों कछु वस ना।
बरनत रस रमनीय रहत रसना में रस ना।
अचला अवसि रतनगर्भा वसुमती सुहावति।
किन्तु प्रेम रस रती धारि यह रसा' कहावति।
प्रीति रहस रस रीति जगत जा उर न भरेगी।
तरसावत मन रसा रसातल गवन करेगी।
सहज नहीं कछु काज नेह जलनिधि अवगाहन।
थाह लैन जो गये मिली जग तिनकी थाह न।
जड़ जंगम जग जीव जाहि निज निज उर जानत।
एक यही आचरज सकत नहि ताहि बखानत।
जानत सब कछु प्रेम-स्वाद मुख बरनि न आवत।
यदपि परम बाचाल मूक बनि भाव जनावत।
विद्या बस तत्वनि के भेद प्रभेद बताये।
गूँगे को गुर खाय जगत बैठ्यो सिर नाये।

देखहु दै मन करि उमंग उपदेस असेसनि।
मनन करहु विद्वान-विपुल-उज्जल उपदेसनि।
उलटा पलटी करहु निखिल जग की सब भाषा।
मिलहि न परि कहूँ एक "प्रेम" पूरी परिभाषा।
स्वयं सिखाय न सकै सारदा याकी पाटी।
परम विलच्छन स्वच्छ प्रेम पूरित परिपाटी।
गोपनीय रस रहै पुरातन प्रथा भली है।
याही सों अधखिली रही यह प्रेम कली है॥

तन्मयता सुख

जब ध्यान में तन्मय होत, स्वकल्पित तासु स्वरूप ही दीसि परै।
विरहा की दशा हू में धीरज दै उमि प्यारो सदा दुख दूरि करै।
भ्रम नष्ट भये पै कछू न कछू बन जीवन को जग रूप धरै।
घबराइ महा बिलखै दुखिया जिय मानों तुसानल माहिं जरै॥

—उत्तर रामचरित्र

जिय मेल

यह गूढ़ सुभाउ को कारन कोउ सबै जग में जिय मेल मिलावै।
नहिं निर्भर सुन्दर रंग औ रूप पै प्रेम-प्रथा नित्त्चै मन आवै।
लखि मित्र पवित्र सरोरुह होय प्रफुल्लित प्यारी छटा सरसावै।
अरु चन्द के होत उदोत द्रवै नित चन्द्रकान्तमनी चितभावै॥

—उत्तर रामचरित्र

सज्जन-प्रेम

सुख दुख में नित एक, हृदय को प्रिय विराम थल।
सब विधि सो अनुकूल, विसद लच्छन मय अविचल।
जासु सरसता सकै न हरि, कबहूँ जरठाई।
ज्यो ज्यो बाढ़त सघन, सघन सुन्दर सुखदाई।
जो अवसर पै संकोच तजि, परनत दृढ़ अनुराग सत।
जग दुरलभ सज्जन-प्रेम अस बड़भागी कोऊ लहत॥

—उत्तर रामचरित्र

भ्रमर-दूत

भ्रमर-दूत

श्री राधा-वर निजजन—बाधा—सकल—नसावन।
जाकों ब्रज मनभावन, जो ब्रज को मनभावन।
रसिक-सिरोमनि मन हरन, निरमल नेह निकुंज।
मोद भरन उर सुख करन, अविचल आनँद पुञ्ज
रंगीलो साँवरौ॥ १

कंस-मारि भूभार-उतारन खल दल तारन।
विस्तारन विज्ञान विमल श्रुति-सेतु-सँवारन।
जन-मन-रंजन सोहना, गुन-आगर चितचोर।
भवभय-भंजन मोहना, नागर नन्द-किसोर
गयो जब द्वारिका॥ २

बिलखाती, सनेह पुलकाती, जसुमति माई।
श्याम-बिरह-अकुलाती, पाती कबहुँ न पाई।
जिय प्रिय हरि-दरसन बिना, छिन छिन परम अधीर।
सोचति मोचति निसि दिना, निसरत नैननु नीर
विकल कल ना हिये॥ ३

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती।
मुनि मन-भाई छई रसमई मञ्जुल काँती।
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर ताल।
लोल लोल तहँ अति अमल दादुर बोल रसाल
छटा छूई परै॥ ४

अलबेली कहुं बेलि, द्रुमन सो लिपटि सुहाई।
धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई।
चातक चलि कोयल ललित बोलत मधुरे बोल।
कूकि कूकि केकी कलित, कुंजनु करत कलोल
निरखि घन की छटा॥ ५

इन्द्रधनुष और इन्द्रबधूटिन की सुचि सोभा।
को जग जनम्यो मनुज, जासु मन निरखि न लोभा।
प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुँ ओर।
छाई छवि छिति पै छहरि ताको ओर न छोर
लसै मन मोहनी॥ ६

कहूँ बालिका-पुंज कुंज लखि परियत पावन।
सुख-सरसावन सरल सुहावन हिय सरसावन।
कोकिल कठ-लजावनी, मनभावनी अपार।
भ्रातृ-प्रेम-सरसावनी, रागत मंजु मल्हार
हिंडोलनि झूलती॥ ७

वालवृन्द हरसत उर-दरसत चहुँ चलि आवैं।
मधुर मधुर मुसकाइ रहस बतियाँ बतरावैं।
तरुवर डार हलावही, 'धौरी' 'धूमरि' टेरि।
सुन्दर राग अलापहीं, भौरा चकई फेरि
विविध क्रीड़ा करैं॥ ८

लखि यह सुखमा-जाल लाल-निज-बिन नँदरानी।
हरि सुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी।

सुधि बुधि तजि माथौ पकरि, करि करि सोच अपार।
दृग जल मिस मानहुँ निकरि, बही बिरह की धार
कृष्ण रटना लगी॥ ९

कृष्ण-विरह की बेलि नई ता उर हरियाई।
सोचन अश्रु विमोचन दोउ दलबल अधिकाई।
पाइ प्रेम रस बढ़ि गई, तन तरु लिपटी धाइ।
फैल फूटि चहुँघा छई, बिथा न बरनी जाइ
अकथ ताकी कथा॥ १०

कहति विकल मन महरि कहां हरि ढूँढ़न जाऊँ।
कब गहि लालन ललकत-मन गहि हृदय लगाऊँ।
सीरी कब छाती करों, कब सुत दरसन पाउँ।
कबै मोद निज मन भरौं, किहि कर धाइ पठाउँ
सँदेसो श्याम पै॥ ११

पढ़ी न अच्छर एक, ज्ञान सपने ना पायो।
दूध दही चारत में सबरो जनम गमायो।
मातपिता बैरी भये, शिच्छा दई न मोहि।
सबरे दिन योंही गये, कहा कहे तें होहि
मनहिं मन मे रही॥ १२

सुनी गरग सों अनुसूया की पुण्य कहानी।
सीता सती पुनीता की सुठि कथा पुरानी।
विषद-ब्रह्मविद्या-पगी मैत्रेयी तिय-रत्न।
शास्त्र-पारगी गारगी, मन्दालसा सयत्न
पढ़ी सब की सबै॥ १३

निज निज जनम धरन को फल उनने ही पायो।
अविचल अभिमत सकल भाँति सुन्दर अपनायो।
उदाहरनि उज्जल दयो, जगकी तियनि अनूप।
पावन जस दस-दिसि छयो, उनको सुकृति-सरूप
पाइ विद्या बलै ॥ १४

नारी-शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस-अवनति प्रचंड-पातक अधिकारी।
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि, सब कोइ।
विद्या-बल लहि मति परम अबला सबला होइ
लखौ अजमाइ के ॥ १५

कौनैं भेजौ दूत, पूत सो बिथा सुनावै।
बातन मे बहलाइ, जाइ ताको यहँ लावै।
त्याग मधुपुरी सों गयो, छाँड़ि सबन को साथ।
सात समुन्दर पै भयो, दूरि द्वारिकानाथ
जाइगो को उहाँ ॥ १६

नास जाइ अक्रूर क्रूर तेरो बजमारे।
बातन मे दै सबनि लैगयो प्रान हमारे।
क्यों न दिखावत लाइ कोउ, सूरति ललित ललाम।
कहँ मूरति रमनीय दोउ, श्याम और बलराम
रही अकुलाइ मै ॥ १७

अति उदास, बिन आस, सबै-तन-सुरति भुलानी।
पूत प्रेम सों भरी परम दरसन ललचानी।

विलपति कलपति अति जबे, लखि जननी निज श्याम।
भगत भगत आये तबै, भाये मन अभिराम
भ्रमर के रूप में॥ १८

ठिठक्यो, अटक्यो भ्रमर, देखि जसुमति महारानी।
निज-दुख-सो अति-दुखी ताहि मन में अनुमानी।
तिहि दिसि चितवत चकित-चित, सजल जुगल भरि नैन।
हरि-वियोग-कातर अमित, आरत गद्-गद् बैन
कहन तासों लगी॥ १६

'तेरो तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतें सुनि।
तेरी गुंजन सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि।
पीत रेख तव कटि वसत, उत पीताम्बर चारु।
विपिन-विहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगार
जुगल रस के चखा॥ २०

'याही कारन निज प्यारे ढिंग तोहि पठाऊँ।
कहियो वासों विथा सबै जो अबै सुनाऊँ।
जैयो पटपद धाय के, करि निज कृपा विसेस।
लैयो काज बनाय कें, दै मो यह सन्देश
सिदोसौ लौटियो॥ २१

'जननी-जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सो प्यारी।
सो तजि सबरो मोह सांवरे तुमनि विसारी।
का तुम्हरी गति मति भई, जो ऐसो बरताव।
किधौं नीति बदली नई, ताकौ परथो प्रभाव
कुटिल विप को भरथो॥ २२

'माखन कर पौछन सों चिक्कन चारु सुहावत।
निधुबन श्याम तमाल रह्यो जो हिय हरमावत।
लागत ताके लखन सो, मति. चलि वाकी ओर।
बात लगावत सखन सो आवत नन्द-किशोर
कितहुँ सो भाजिके ।। २३

'वुही कलिन्दी-कूल कदम्बन के वन छाये।
*बरन बरन के लता-भवन मन हरन सुहाये।
वुही कुन्द की कुंज ये, परम-प्रमोद समाज।
पै मुकुन्द विन बिस-भये, सारे सुखमा साज
चित्त वां ही धर्यौ ।। २४

'लगत पलास उदास, शोक मे अशोक भारी।
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी।
तजि तजि नित प्रफुलित पनौ, बिरह-बिथित अकुलात।
जड़ हू ह्वै चेतन मनौ, दीन मलीन लखात
एक माधौ बिना ।। २५

'नित नूतन तृन डारि सघन वंसीबट छैयां।
फेरि-फेरि कर-कमल, चराई जो हरि गैयां।
ते तित सुधि अति ही करत, सब तन रही झुराय।
नयन स्रवत जल, नहिं चरत, व्याकुल उदर अघाय
उठाये म्हौं फिरैं ।। २६

* अथवा झूमत लतिका भवन बने बहु बरन सुहाये।

'बचन-हीन ये दीन गऊ दुख सो दिन वितवत।
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवत।
एक संग तिनकों तजत, अलि कहियो, ए लाल।
क्यों न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल
मोह ऐसो तज्यो॥ २७

'नील-कमल-दल-श्याम जासु तन सुन्दर सोहै।
नीलाम्बर वसनाभिराम विद्युत मन मोहै।
भ्रममें परि घनश्याम के, लखि घनश्याम अगार।
नाचि नाचि व्रजधाम के, कूकत मोर अपार
भरे आनन्द मे॥ २८

'यहॅ को नव नवनीत मिल्यो मिसरी अति उत्तम।
भला सके मिलि कहॉ शहर में सद या के सम।
रहै यही लालो अजहुँ, काढ़ति यहि जब भोर।
भूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखन-चोर
बंध्यो निज टेव को॥ २९

'वा बिनु को ग्वालनु को हित की वात सुझावै।
अरु स्वतंत्रता, समता, सहभ्रातृता सिखावै।
यदपि सकल विधि ये सहत, दारुण अत्याचार।
पै न कछू मुख सो कहत, कोरे बने गॅवार
कोउ अगुआ नहीं॥ ३०

'भये संकुचित-हृदय भीरु अब ऐसे भय में।*
काऊ को विश्वास न निज-जातीय-उदय में।

---

* अथवा—आतम-विस्मृत भये व्यक्तिगत-स्वार्थ हृदय में।

लखियत कोउ रीति न भली, नहिं पूरब अनुराग।
अपनी अपनी ढापुली, अपनो अपनो राग
अलापैं जोर सों॥ ३१

'नहि देशीय भेष भावनु की आशा कोऊ।
लखियत जो ब्रजभाषा, जाति हिरानी सोऊ।
आस्तिक बुधि बन्धनन से, बिगरी सब मरजाद।
सब काऊ के हिय बसे, न्यारे न्यारे स्वाद
अनोखे ढंग के॥ ३२

'बेलि नवेली अलबेली दोउ नम्र सुहावैं।
तिनके कोमल सरल भाव को सब यस गावैं।
अबकी गोपी मदभरी, अधर चलै इतराय।
चार दिना की छोहरी, गई ऐसी गरवाय
जहाँ देखो तहाँ॥ ३३

'गोबरधन कर-कमल धारि जो इन्द्र लजायौ।
तुम बिन सो तिह को बदलौ अब चहत चुकायौ।
नहि बरसावत सघन अब, नियम पूर्वक नीर।
जासो गो-कुल होत सब, दिन दिन परम अधीर
न्यार सपनो भयो॥ ३४

'गोरी को गोरे लागत जग अति ही प्यारे।
मो कारी को कारे तुम नयननु के तारे।

उनको तो संसार है, मो दुखिया को कौन।
कहिये, कहा विचार है, जो तुम साधी मौन
बने अपस्वार्थी ।। ३५

'पहले को सो अब न तिहारो यह बृन्दावन।
या के चारो ओर भये बहुविधि परिवर्तन।
बने खेत चौरस नये, काटि घने बन पुंज।
देखन को बस रहि गये, निधुवन सेवा-कुंज
कहां चरिहै गऊ ।। ३६

'पहली सी नहि या यमुना हू मे गहराई।
जल को थल, अरु थल को जल अब परत लखाई।
कालीदह कौ ठौर जहँ चमकत उज्जल रेत।
काछी माली करत तहँ, अपने अपने खेत
घिरे झाऊनि सों ।। ३७

'नित नव परत अकाल काल को चलत चक्र चहुँ।
जीवन को आनन्द न देख्यो जात यहाँ कहुँ।
बढ़यो यथेच्छाचार-कृत जहँ देखो तहँ राज।
होत जात दुर्बल विकृत दिन दिन आर्यसमाज
दिनन के फेर सों ।। ३८

'जे तजि मातृभूमि सो ममता, होत प्रवासी।
तिन्हें विदेसी तंग करत दै विपदा खासी।
नहिं आये—निरदय दई, आये—गौरव जाय।
सांप छछूंदर गति भई, मन ही मन अकुलाय
रहे सब के सबै ।। ३९

'टिमिटिमाति जातीय-जोति जो दीप-शिखा सी।
लगत बाहिरी ब्यारि बुझन चाहत अबला सी।
शेष न रह्यो सनेह को, काहू हिय मे लेस।
कासों कहिये गेह को देसहि मे परदेस
भयो अब जानिये' ॥ ४०

(अपूर्ण)

प्राकृतिक सौन्दर्य

वह मुरली अधरान की, वह चितवन की कोर।
सघन कुंज की वह छटा, अरु वह जमुन हिलोर॥
पीत पटी लिपटाय के, लै लकुटी अभिराम।
बसहु मन्द मुसिक्याय उर, सगुण रूप घनश्याम॥

कियौ गीत यह आज नाथ! तेरे ही अरपन।
तव गुण रज सों माँजि प्रकृति को साँचौ दरपन॥

प्राकृतिक सौन्दर्य

प्रातः श्री

जय-जय जग आशारूप, ऊषे ! प्रतिभा अनूप।
जागृतिमय पुण्य प्रभा प्रिय प्रकाशिनी ॥
सीतल सुरभित समीर सरल सुमति सुखद धीर।
वर बहाय मृदुल-मृदुल मुद विकासिनी ॥
हृदय-कमल कोष अमल समुदित दल नवल-नवल।
कोमल कर रुचिर खोलि रुचि विलासिनी ॥
द्विजगन करि-करि कलोल गावत स्तुति सुखद लोल।
बोलति सुर सरस मनहुँ मञ्जु-भासिनी ॥
नवद्रुम पल्लव डुलाय सुमन-सुमन रज बिछाय।
स्वागत तव रचति प्रकृति पुण्य-रासिनी ॥
मधुप चारु चरितवान विद्या - मधु करत पान।
ठौर-ठौर गुञ्ज तिन त्रिताप-नासिनी ॥
आतम-विस्मृति कराल फैलत जब तिमिर जाल।
करति ज्ञान-सूर्य-उदय जग विभासिनी ॥
सुवरन रंजित सुरंग रम्य परम प्रेम-संग।
हिम अंचल सीस धारि सदभिलासिनी ॥
सहृदय सन्तापहारि भारत आरत निहारि ॥
ओस-अश्रु सजल जुगल दृग अकासिनी।
अस सुर मुनि सुजन सेवि प्रातः श्री सत्यदेवि।
दया द्रवित अति पुनीत हृदय-वासिनी ॥

वसन्त

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी मोर पखा सिर पे लहरैं।
अलबेलि नवेलिन बेलिनु में नवजीवन ज्योति छटा छहरैं॥
पिक भृंग सुगुंज सोई मुरली सरसो सुम पीतपटा फहरैं।
रसवंत विनोद अनत भरे ब्रजराज वसंत हिये विहरैं॥

ऋतुराज आज कैसा प्यारा वसन्त आया।
जिसका प्रभाव पावन सारे जहाँ मे छाया॥
कैसे रसाल बौरे मृदुमजरी सजा के।
फैली सुगन्ध सौंधी भौरों का मन लुभाया॥
कलरव कलाप कोमल करती हैं कोकिलायें।
अलिपुंज ने मनोहर निज गुंज गान गाया॥
देखो विचित्र शोभा सरसो दिखा रही है।
सुन्दर सुवर्ण रंजित क्या दृश्य जी को भाया॥
फूले है द्रुम रंगीले लतिकाये लहलहातीं।
सबने ही अपने-अपने उत्साह को दिखाया॥
ऐसा सुराज पाके हे हिन्द के सपूतो।
प्रफुलित हो काम कीजै प्रकृती ने यह बताया॥
भारत वसुन्धरा का गौरव जो गिर रहा है।
यदि चाहते हो प्यारे फिर से उसे उठाया—
तो पुत्र पुत्रियो को शिक्षा अभी से दीजै।
है सत्य मंत्र ये ही ऋषियो ने जो सिखाया॥

बसन्त-स्वागत

जय बसन्त रसवन्त सकल-सुख-सदन सुहावन।
मुनि-मन-मोहन भुवन तीन जिय-प्रेम गुहावन।
जय सुन्दर-स्वच्छन्द-भाव-मय हिय प्रति परसन।
जय नन्दन-बन-सुरभित-सुखद-समीरन सरसन।
जय मधुमाते मधुप भीर को चहुँ दिसि छोरन।
ललित लतान बितानन में दुति दलहिं बिथोरन।
जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन।
जय रस रंग-तरंग बेलि अलबेलिन बरसन।
करिबे स्वागत आप हरन-त्रयताप सकल थल।
जड़ जंगम जग-जीव जनौ जाग्यौ जोवन-जल ॥१०

जो तरु त्रिथित-वियोग सदां दरसन तव चाहत।
नौचि नौचि कच-पातनि अश्रु प्रवाह प्रवाहत।
देखहु किशलय नहीं, आंखि अति अरुण भई-तिन।
रोवत रोवत हाय! थके, अब टेर सुनौ किन?
तुम्हरी दिसिहि निहारि पुलकि तन, पात हिलावत।
करसों मानहुं मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत।
बौरे नहीं रसाल बने बौरे तव कारन।
बलिहारी तव नेह-नियम निठुराई धारन!
तुम सौ कठिन कठोर और जग दूसर दीख न।
सांचो किय निज नाम "पञ्चशर को शर तीखन" ।२०

तौ हू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत।
करनौ वाकी ओर जाहि सो प्रेम लगावत।

लखि तुम्हरे पद-कञ्ज रञ्ज सब भूलि भूलि तन।
साजि साजि सँग ललित लहलही लौनी लतिकन।
भांति भाँति के बिटप-पटनि सजि वे ही आवत।
कोऊ फल कोउ फूल मुदित मन भेटहिं लावत।
"जयति" परसपर कहत पसारत आपनि डारन।
मनहु मत्त मन मिलन मित्र कर कर गर डारन।
आवहु आवहु वेगि अहो ऋतुगन के नरपति।
तरुवृन्दनि को लखहु आप शोभा की सम्पति ॥३०

वह देखौ नव कली भली निज मुखहि निकारति।
लगि लगि वात-प्रभात गात अलसात सम्हारति।
प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति।
लहकि लहकि जनु स्वाद लेन को भाव बतावति।
मुखहि मोरि जुमहाति भरी तन अतन-उमंगन।
जोम-जुवानी जगे चहत रस-रंग-तरंगन।
वह देखौ अलि पुञ्ज कली-कल-कुञ्ज गुँजारत।
मानहु मोहन मनहि मदन को मन्त्र उचारत।
ठौर ठौर मधु-अन्ध भयौ वह देखौ झूमत।
कबहूँ जापर वापर यो सब ही पर घूमत ॥४०

सुन्यौ प्रथम रस रास रच्यो श्रीपति. इम कानन।
गूंज्यो वृन्दाबिपिन मुरलिधर-मुरली तानन।
वह देख्यौ हम आज रास-रस-रहस रंग मनु।
मधुर ललित अति निपट प्रकृति को जो त्रिभंग तनु।
वित तो प्यारो कृष्ण, कृष्ण इत अली विराजत।
पीत पटी वित कसी, पीत इत रेख सुभ्राजत।

गोपिकानि के संग वितै बनवारी आवन।
बनवारी नव कली संग इत षटपद-धावन।
वित ब्रजवाला मुग्ध-करनि मुरली ध्वनि सोहनि।
इतहु नेह नद द्रवत अली गुञ्जार बिमोहनि ॥५०

जय पद पद पर परम प्राकृतिक प्रेमहि पीवन।
जोवन ज्योति जगावन जय जीवन जग जीवन।
फूलत कच-कचनार अपार अनार हजारन।
किंशुक जाल तमाल विसाल रसाल-पसारन।
वह देखौ कुल बकुल घिरयौ जो आकुल मधुपन।
चोरत चहुंघा चित्त निचोरत चारु मधुरपन।
कहूँ पटल के पुहुप चटकि चटकत चित चायन।
बौर आनँद मनहुं प्रेम घोरे मन भायन।
जगत-जननि का महा अमगल मूल नसावन।
मानहुँ सब जग-वदन वन्दनवार लजावन ॥६०

मुकुलित अम्ब कदम्ब कदम्बनि पै कल कूजत।
"केहू केहू" मोर अलापत आशा पूजत।
अवरेखहु निज स्वच्छ छटा जमुना जल कूलन।
सटकि कुञ्ज वन सघन घटा नव फूले फूलन।
द्रुम डारनि के बीच चपल चहचहीं चुहूकनि।
कोयल-कीर-कपोत-कलित कल कंठ कुहूकनि।
मानहुँ करि श्रुति-पाठ धरम की ध्वजा उड़ावत।
"हे भारत अब उठौ तजौ आलस" समझावत।
ये सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत।
करसायल मन-हरनि हिरनि सँग इत उत डोलत ॥७०

दुबरी गहि मुख तृनहि सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति।
श्री गोविन्द गुपाल कृष्ण सुधि करि जनु रोवति।
बछरा अलप अजान न्यार भरि थरकत-फरकत।
लभरत झिझकत चिझुकत कुदकत फुँदकत बबकत।
देखहु यमुना पुलिन सुभग शोभित रेती-छबि।
चिलकति झलकति मनहुँ कान्ति प्रगटी खेती फबि।
किम्बा परम पवित्र रची वेदी मन भावनि।
तीन लोक छबि सची मनहु आनन्द दृढावनि।
ललकि हिलोरे खात कलिन्दी रस सरसावति।
नीलाम्बर तनु धारि कृष्ण मिलिवे जनु धावति ॥८०

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि।
सारस हंस चकोर घोर सब सोर करैं मिलि।
जुही गन्धि सो पुही चुई परिमल शुचि धावति।
पुहुप धूल धूसरित हीय सब सूल नसावति।
हरी घास सों घिरे तुंग टीले नभ चुम्बत।
तिन मे सीधी सरल सरग दिसि डगर उलम्बत।
जब सो बहरै लहरै छहरै तेरी समुदित।
बिन कारण नहिं ज्ञात आप आपहि सो प्रमुदित।
कोऊ सरसो सुमन फूल, जौ सिर सो बांधत।
गरियारन गोरिन के सँग कोउ चुहल मचावत ॥९०

कहुं गँवार गम्भीर बसन्ती बसन रँगावत।
जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सबके मन भावत।
ऊधम उमड्यो परत रँग्यो जग तव रस रागत।
गारी पिचकारी तारिन सो तेरो स्वागत।

कोउ बावरे भये गुलालहि मगन उड़ावत ।
करि फगुवारन लाल गीत फागुन के गावत ।
हुरिहारनि की धूम और रगरेलनि पेलनि ।
देखहु तिनकी अहा खेल खेलनि भकभेलनि ।
मोद उदधि की लहरि सवन उनमत्त बनावति ।
तोरि लाज कुल दृढ़ पुल कों जनु उमगति आवति ॥१००

कबहुँ सीत भयभीत कबहुं पावसहि नचावत ।
ग्रीसम के गहि केस स्वेद उर में छलकावत ।
सीतल मन्द सुगन्ध सनी नित वायु बहावत ।
याही सों तू सांच माच "ऋतुराज" कहावत ।
भारत आरत ताकी करक करेजा करकत ।
पहुँच्यो दशा बसन्त कहां सो ररकत ररकत ।
ऋतु सुमौलिमनि अहो ! यहाँ के हरहु त्रितापन ।
प्रेम वन्त ! गुनवन्त ! करहु सुख-शान्ति सुथापन ।
हमहूं एक गमार गाम-रस-पुलकित तन मन ।
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छमियो सब भगवन ।
महिमा अपरम्पार पार को पावत पूरन ।
सत्य, वर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन ॥ ११२

ग्रीष्म-दुपहरिया

लसैं मधु परनी के कहुँ पुञ्ज । साजि दल नवल नवल सों कुञ्ज ॥
सघन शीतलता का ललचात । तहाँ देखो टिटीहरी जात ॥
कहूँ अतसी गाडर द्रुम लूमि । झुके तट ओर रहे सरि चूमि ॥
तहाँ पवई पर को फैलाय । छाँह के लालच भाजी जाय ॥

जहाँ वंजुल की मंजुल बेलि। हरी लहराइ रहीं अलबेलि
वही सारस चकवनु के ठाम। पंख मुख ढाँकि करैं विसराम
कहूँ वीरुत-तरु पे धरि धाम। कलित कूँजे कपोत अभिराम
करै नीचे तीतर-परिवार। 'पटीलो' शब्दनु की झनकार॥

—भवभूति

ग्रीष्म-गरिमा

कँपत चर अचर सकल लखि याहि, प्रभो परताप ताप के धाम
शीत-मद-हरन सरन-प्रद पाहि तिहारे चरण कमल परनाम
प्रेमबस प्राणिनु के पुलकाय, शिशिर के शीतहिं दियो भगाय
हमारी करिके परम सहाय, सतावत सोई तुम अब हाय
सकल संसार बिकल बेहाल, कष्ट कछु कहत न बनै असीम
सहन कर सकत न तुम्हरो ज्वाल, द्रवहु भूतेश भयंकर भीम
बिबस नर नारी चहुँ चिल्लात, जबै फटकारत झाँक विशाल
बिकल बहु बिलपि-बिलपि बिल्लात, "हाय यह खाये लेति कराल"
देखि तव दारुण दुपहर दर्श, छांह हू तकत छांह के हेत
हिय न आकर्षत कितहू, हर्ष लता बनिता कविता नहिं देत
पसीना पोंछत वारहिंबार, पसीजत तोऊ सारे अंग
कलित कुम्हिलात हियो को हार, उडत सब मुखमण्डल को रंग
हरति तव ज्वाल रसा-रस आय, सरित सरवर सव सूखे जात
बात बस बारि बहत, भय पाय मनहुँ तिन थर-थर काँपत गात
तपनिसों सुधिबुधि तजि कहुँ जाय, मोर जब पैठत पाँख पसारि
दुरत ता नीचे विषधर आय, विकल प्राणनिको मोह विसारि
घाम के मारे अति घबराय, फिरत मारे चहुँ जीवन काज
एक थल अपनो बैर बिहाय, नीर ढिग पीवत मृग मृगराज

लार टपकति जा की अकुलात, स्वान अति हाँपत जीभ निकारि।
बिलाई कढ़ि समीपसों जात, तऊ नहि बोलत ताहि निहारि।
तरणि को तापत तरुण प्रताप, बिबस तरुणी गन तजि संकोच।
निवारति वसन आपसो आप, नहीं कुछ अनघेरिन को सोच।
उतेसों इत, इतसों उत जात, निरखि निरसात सुहात न ठाम।
कृपा तो चिपचिपात सब गात, न पावत छिनक कहूँ विश्राम।
चूम मुख दिना गये द्वैचार, प्यार करि पावति परम प्रमोद।
मात सोइ तव बस सकल विसार, उतारति निज बालक को गोद।
राह चलिबौ नहि तनिक सुहाय, मचकि मसका तव मारैं देत।
पथिक पछी पादप तर धाय लेत सीरक तव आवत चेत।
तपत रवि सहस किरन बिकराल, चील्ह चीहरत गगन मडराय।
भभकि भुव उगिलत दावा ज्वाल, लूअ की लपट झकोरा खाय।
महिष सूकर गन तालन जाहि, न्हात लोरत अति हिय हरसात।
कीच सनि मुदित महामन माहि, मनहुँ तन लगि चन्दन सरसात।
जबै अटकत आपस मे बस, द्रोह दावानल पटकत आय।
खटकि चटकत करिवे निजध्वस, नसत पलभर में बैर बिसाय।
सर्प अपनी धुन मे दरसाय, पायकें कहूँ जलाशय तीर।
उडति बैठति पुन उड़ि-उड़ि जाय, बिकल अति मधु माखिन की भीर।
करति ना कोकिल निज कल गान, भ्रमर गुजन सो सूनी कुंज।
परत पद तर पजरत पाषान, जरत परसत पिपीलिका पुज।
ताप बस ह्वै अत्यंत अधीर, कहूँ कुलिलत नहि बछरा गाय।
द्रुमन तर पी प्याऊ को नीर, फिरत जिय-जरनि तऊ ना जाय।
रेत सो बाहिर भुरसत पाम, तजत डरपत छिन भर को धाम।
प्रबल धमका की पारत ग्राम, परै छाती नहिं करिवे काम।

निरुद्यम निस्सहाय अतिदीन, निबल सहि सकत न तेरी ज्वाल।
उपासे प्यासे बसन बिहीन, लगत जल प्रान तजत ततकाल।
मित्र को तपत देखि असहाय, लुकन नीचे तुमसो डरि हीय।
हिमालय हिम जब जाति पराय, जगत करुणा न तऊ तव जीय।
यदपि पीवत जन कृत्रिम तोय, प्यास प्रबला तौऊ नहि जाय।
कंठ की शीतलता गई खोय. रह्यो रसना मे रस ना हाय।
करत छिरकाव न पूरत आस, गरम निकसत धरती सो भाप।
चमेली पटल पुहुप नित पास, तऊ तव अटल रूप सो ताप।
लगीं खस-टटियां छिरकी जात, खिचत खस पखा तिनके संग।
नैंक नौकर के झोखा खात घुसत तुम वहाँ बड़े बेढंग।
कबहुँ चन्दन घिसि धारत अंग, करत सेवन उसीर करपूर।
बगीचन बागन घोटत भंग, तबहुँ नहि होय शान्ति भरपूर।
सेत कारी पीरी अरु लाल, लाइ कें तुम आँधी परचण्ड।
उखारत जर सो वृक्ष विशाल, गिरावत तिनकौ गर्व अखण्ड।
गगन मे गगन रही अति छाय, लखत नहि नील बरन आकास।
दुरत निकरत पुनि पुनि दुरिजाय, नखत दल करत न प्रबल प्रकास।
सुधाकर सुधा करनि फैलाइ, करति कछु मटमैली सी जोति।
यदपि नैनन कों अति सुखदाइ, तऊ मनचीती तृप्ति न होति।
कछुक जब रजनी होत व्यतीत, अटनि पै लै सितार मिरदंग।
गवावत गावत सुन्दर गीत, भंग तऊ करत सबै तुम रंग।
स्वदेशी मलमल मल-मल धोय, सदली ताको सुघर रँगाय।
पहरि ताकी धोती तिय कोय, रमत परि तबहुँ न कष्ट नसाय।
उठें खटिया सो नित परभात, ब्यारिहू सीरी-सीरी खात।
उमस सो तबहूँ सिर चकरात, सोचिये पढ़न लिखन फिर बात।

न भावत असन बसन बनबाग, अलप घर घरनी सों अनुराग।
खुले तव पाइ अनुग्रह भाग, कमायो सेतमेत बैराग।
प्रफुल्लित मधुर आक जवास, जरे तन हरे-हरे पटसाज।
तुम्हें कुसुमाञ्जलि सहित हुलास, देत स्वीकार करो महाराज।
विनय हमरी अब दोऊ कर जोरि, नाथ हम निरपराध निर्दोष।
सत्य पुनि करत निहारि-निहारि तजहु निज महाप्रलय कर रोष।
भेटि पावस सनेह सरसाइ, सघन घनश्याम छटा दरसाइ।
जगत कों जनि रिसों तरसाइ, सरस हिय रस बरसा बरसाइ॥

घन विनय

घनश्याम रस बरसाना।

नूतन जलधर नवल सुखद तन रुचिर छटा दरसाना।
पुनि-पुनि परम पुनीत प्राकृतिक प्रेम प्रभा परसाना।
पुण्य पियासे कृषक हृदय मे सुख तरंग सरसाना।
तरसा चुके इन्हें तुम इतना, अधिक न अब तरसाना॥

पावस

१

बदरवा दल पुनि-पुनि घिरि आवैं।
जानि मनुज-कुल-हीन दशा कों नयन नीर टपकावैं।
जो ध्वनि करत विथित ह्वै कबहूँ करुणा-रुदन सुनावैं।
निरख रुधिर रञ्जित बसुधा को, विपुल हृदय बिलखावैं।
भये बावरे से सुधि बुधि तजि नभ पथरा बरसावैं।
घन मुख शोक कालिमा छाई विकल इतै उत धावैं।
भरे वायु के जोर सोर में कैसो रोर मचावैं।
सत्य सहानुभूति जग जनसों जानि परै दरसावैं॥

२

जे का पावस सरस सुहावनि ?
अमित अलौकिक है गति जाकी, कछु की कछु दरसावनि।
घर-घर बैर बदरिया छाई, ऐक्य दिनेश दुरावनि।
तृष्णा तरल तड़ित लपकति अति, झपकति हिय डरपावनि।
निरुत्साह घन घोर नगारे, क्रोध अँधरिया छावनि।
जगदम्भी जुगुनू छिन भगुर प्रभा प्रगटि चमकावनि।
चकित मृगी स्वदेश-बान्धव रति, नय गर्भित बिड़रावनि।
काम बूँद उपकार धरा पै, लहि पपरा बिरचावनि।
उत्साहंकुर लहलहातु ना, स्वारथ सजल गिरावनि।
लोक वेद कुलरीति कियारी, ताकों काटि बहावनि।
देश हितैपी हरी वनस्पति, ताहि सरोष सरावनि।
ललित तरुन तरु आकनि पौरुष, पात निपात करावनि।
छटपटाति खल आशा नदियनु, नित चढ़ाय बौरावनि।
उष्ण परोदय कसक पारि निज, जगति जोय घबरावनि।
नित विदेश व्यापार कलापी, कलुषित मन हरषावनि।
कूकत कोयल शिल्प चहूँघा, धीर न ताहि धरावनि।
बिना लाभ बकबादी दादुर, चहुँ टर टर टर्रावनि।
मधु-मुख उर-विष वीर बहूटी, भल-भल थलन दिखावनि।
कडखा कडे बचन गावन की, प्रथा पुञ्ज अधिकावनि।
कविता स्वांति पिपासा व्याकुल, कवि पपिया अकुलावनि।
दीन दशा कासो जिह कहियत, विविध भाव उपजावनि।
जय घनश्याम श्यामता धारनि, नित ललाम मन भावनि।
नूतन तन धरि प्रेम पयोधरि, बरबस मन सरसावनि।

शान्त होहु पुरवहु अभिलाषा नेह नवल उलह्यावनि।
सत्य सतत बस यही प्रार्थना स्वीकृत करु प्रमुदावनि॥

—अगस्त १६०८

२

ज़य जग-जीवन जलद नवल-कुलह्या-उलह्यावन।
विश्व वाटिका विमल वेलि वन वारि बहावन।
जीवन दै बन वनसपती में जीवन लावन।
गरु ग्रीषमपन-दरप दलन, मन मोद मनावन।
जय मनभावन विपत-नसावन सुख सरसावन।
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन।
जय घनश्याम ललाम प्रेम-रस उरहि दृढ़ावन।
फूल भरी वसुधा सिर सारी हरी उढ़ावन।
वाधि मण्डलाकार पुरन्दर को धनु पावन।
तरजि दिखावन गरजि, लरजि मन भय उपजावन॥ १

सनकावन गन पवन, ज्योति जुगनू चमकावन।
ठनकावन घन सघन, दामिनी-द्युति दमकावन।
पठइ सदा धाराधर धावन कृषी जुतावन।
घोर घमण्ड सुनावन बलकर अनल वुतावन।
निज सुखमा दरसावन, गावन मनहि लगावन।
सीर समीर रसावन, अंग उमंग जगावन।
तापन-सतत सतावन, कृषकन जीय जुरावन।
अतुलित जोम जतावन युवजन हीय चुरावन।
भर लावन वुदवुदा उठावन भुवि लरजावन।
अगनित अमित अनूप कीट-कुल-वल सरजावन॥ २

चेतन और अचेतन सब के हिय लहरावन।
जयति पुलकि पग धारि पीर हरि धीर धरावन।
ठौर ठौर बग-पांति-सोहनी सरन सजावन।
बीर बहूटी बिपुल गोल गुलगुली भजावन।
छावन दादुर-दल द्रुमदल पलपल खरकावन।
बिथित वियोगिनि भोगिनि हिय पिय बिन धरकावन।
जारि जवासे जोर जचावन मोर नचावन।
करखा धूम रचावन बरखा धूम मचावन।
कारी कारी अँधियारी भारी झपकावन।
टप टप टपका टपका घर बागन टपकावन॥ ३०

उमगावन सर सरित उमँग उल्लास गुँजावन।
पपियन प्यासे बुझावन जग की आस पुजावन।
जयति नवेली अलबेली झूला झुलवावन।
मधुर मनोरंजन कजरी-धुनि कलित सुनावन।
शोक समूह भुलावन जय छिति-छटा गुहावन।
बादर बलहिं बुलावन पावस परम सुहावन।
जो बसुधा को सुधा सुखद, दुख दारिद खोवन।
ता निज जीवन को जग-जीवन चहियतु जोवन।
तासो निज तन जन-मन रोचन सशय मोचन।
पेखहु भरि भरि लोचन तजि सब सोच सकोचन॥ ४०

अद्भुत आभावन्त अंग अति अमल अखण्डत।
घुमड़ि घुमडि घन घनो धूम घिरि घोर घमण्डत।
कारे कजरारे मतवारे धुरवा धावत।
सुख सरसावत हिय हरसावत जल बरसावत।

उछरि उछरि जल-छाल छिरकि छिति छर र-र छमकति।
चंचल चपला चमचमाति चहुँघा चलि चमकति।
मनु यह पटिया परी माँग ईंगुर की राजत।
छाँह तमालन श्याम, श्याम संग श्यामा भ्राजत।
घर कोठनि की तरकनि दरकनि माँटी सरकनि।
देखहु तिनकी अर-रर-रर ऊपर सो ररकनि॥ ५०

खाय चोट फन पलटि सम्हरि रिस करि सुंकारत।
लपलपाय जुग जीभ फनी फूं फूं फुंकारत।
चलैं पनारे झपटि दाल तिन की दुरि अधबर।
लै लै झोका पौन खाति झोका अंत सुन्दर।
हाथ हाथ में डारि डारि लरिका हँसि खिलकत।
कुदकि कलिन्दी कूल कहूँ क्रीड़ा करि किलकत।
देखहु ग्वार गँवार घेरि गैयन कहुँ मटकत।
झपटत झटकत पटकत सटकत लपटत रपटत।
लखत खरी बस-करी जुआनी चूवत नस नस।
हृदय हरी यहि घरी भरी उनमत्त नवल रस॥ ६०

यमुना ढरकि करारनि दै दै ढका ढहावति।
प्रेम-पगी रज-रगी लखहु जनु झूमत आवति।
चपल लहरि चित चोर चलावत चारु भँवरजल।
तरल त्रिबलि तर मनहुँ लसत गम्भीर नाभिथल।
पवन वेग सों चर चराय तरु- चर-रर चरकत।
इतउत झोका खात डार तिन अधवर लटकत।
गिरत आप सों आप पात अति सानुराग मन।
उतावरे दिसि भूलि भजत तव लेन आगमन।

इत उत करवट लेत वियोगी पर न कितहु कल।
सीरे भरत उसास बास कोमल कोयन जल॥ ७०
लखि तव शोभा जपत यही नित नूतन तन धर।
हाय पयोधर ! हाय पयोधर !! हाय पयोधर !!!

मेह थमत चुहकार चहचही करत चाव चित।
फर फराय निज परन फिरत पंछी गन प्रमुदित।
धोये धोये पात तरुन के हरसावत मन।
नेक भकोरत डार झरत अनगिनत अम्बुकन।
घन बूँदन सन सजल थलन उपजत बुदबुद गन।
रेख बतुलाकार बनति तिनके चहुँ ओरन।
बढ़ि-बढ़ि अपने आप नसति जल मे ताकी गति।
जिमि निरधन हिय आस उठति बढ़ि बढ़ि पुनि बिनसत॥८०

सुखद सुरीलो गामन मे ललना गन गामन।
भरि उछाह घरसो तिन आमन झूलन जामन।
पवन उड़त उर के पट को झटपटहि सम्हारन।
मंजुल लोल कलोलनि बालन बिविध मल्हारन।
एक एक को पकरि बुलावन कर गहि लावन।
जोरावरी चलावन झूला झमकि झुलावन।
मधुर मिसमिसी सो मचकी दै जाहि हिलावन।
"राखो, मेरी सोह, मरी" कहि तास रखावन।
ग्रीषम गयो पराइ सकल थल सोहत सीतल।
देत लैन नहिं चैन रैन तऊ मसक-दस-दल॥ ९०

काटत सोवत जनन अभय करि निज निज गरजन।
जिमि नृप मुँह लगि, देत प्रजाको अति दुख दुरजन।
जरत दीपकहि देखि, जरन जावत पतंग गन।
देत प्रेम-पन परिचय ता संग, होमि होमि तन।
सती रीति अब उठीं सभ्य देशन मे या खन।
लाज न, जब तब राजपुत्तिका पजरत लाखन।
कबहुँ दुरत घन पटल कबहुँ निकरत पुनि ता सन।
बिमल उजास अकास चन्द्रमा करत प्रकास न।
झिल्लिन की झनकार झुण्ड झट झट झन झनकत
प्रकृति देवि के कड़े छड़े मानहु छन छनकत॥ १००

मजु मँजीरनि के बजाय कोउ साज सजावत।
कै बरदानी रानी बानी बीन बजावत।
इमली नीम फरास आम अमरूद अनारन।
पीपर ताल करील बेरि कीकर कचनारन।
त्यर सीसम सिरसादि विटप करि तव रस सेवन।
नयो जनम लहि तुमहि देत आसीस मुदित मन।
ज्वारि बाजरा मका अराहरि मूंग मोठ बन।
ग्वारि कांगुनी तिल रमास नव-उरद हरत मन।
झिलमिलात जल बूँद पात पातनि पै भावत।
हरी मन हरी "चरी" भरी सौन्दर्य्य सुहावत॥ ११०

कच्चे पके फल आम बोझ सो आम झुकावत।
सतपुरुषन के विभव आय जस नवनि जनावत।
टपकी परति वहार लदी जामुन जामुन तर।
भारत "जम्बू द्वीप" कहावन जनु जिनहीं पर।

मन मयूर को करसत दरसत बरसत बादल।
तरसत तरुनि नबेलिन बेलिनि फुरत नवल दल।
कमल केतकी जुही कुटज केसर प्रिय प्रफुलित।
कुसुमित कलित कदम्ब करत बन उपवन सुरभित।
कोयल करत किलोल ललित रूखन चहुँ लखि लखि।
मन्द मन्द चलि मधुप पियत मकरन्दहि चखि चखि॥ १२०

रमत निरत जब रसिक मालती मञ्जुल कलिकन।
धरत श्याम तन सेत बरन अबरन तिन रज सनि।
कुल कलापि कमनीय केलि कल कुंज कलापत।
प्यासो पुनि पुनि "पीय पीय" पपिया परलापत।
अपनी दिसिहिं, पयोधि चितव चातक की चितवनि।
टेरनि "पिय पिय" रटि रटि ढेरनि दुख दिन बितवनि।
रसना में रस नाहिं तऊ चिल्लात न चूकत।
बीर धीर गम्भीर भांति यह कहि मनु कूकत।
"जाओ पीओ कहूँ कहूँ कैसेऊ कोऊ जन।
मेरी तो अब डोरि लगी तोही सो है घन॥१३०

देते झकोरा कहा झकोरा खात सनेहन।
मेह! जाउ बरु देह, जाँउ जाचन पर-गेह न।
बरु बल बरखा उपल मरोरहु मेरी पाँखन।
तोऊ निहचल चाह चित्त में स्वाँती चाखन।
चाहैं सब थल भरे सिन्धु सर सरितन के जल।
अमर मूरि मेरी सुखदायनि स्वाँती केवल।
बेर बेर तब जाँच प्रेम मे टाँच न लावति।
पैनी पट पर पै हू पैनी साँच कहावति।

परम नरम मम हृदय देखि तोहि सरम न आवत
जारे बजमार ! पपिया कों का अजमावत ॥" १४०

प्रेम बिबस, लखि देर, रोस सो घन बिदार कर।
प्रिय पंकेरुह पाँति प्रफुल्लित करन प्रभाकर।
मृग करसायल करन मचक मय घाम निकारत।
अचक सघन घनश्याम छाँह गहि ताहि निवारत।
घास परस्पर बढ़ी लखहु निज अङ्ग लपेटति।
मनु बियाग सा बिथित सहेला भुजभरि भेटति।
अथवा बार सँवार प्रकृति कटि पर सटकावति।
ललकि ललकि लहराय लचकि लचि लट लटकावत।
दिशा मजीं, रज दबो, हरत रंग सुन्दर बरसत।
मनहर मंजुल दृश्य दूर दूरन लो दरसत ॥ १५०

बरन बरन के बादर सो कहुँ परति फ्वार अति।
भीनी भीनी गंध गहति वर बहति पवन गति।
देखहु मनहि प्रसन्न ललित मृग छौननि आनन।
डोलनि तिनकी कानन, करि ऊपर कों कानन।
रज बिहीन पतरी लतिकन को देखहु लहकन।
घूँघट पट सों मुख निकारि चाँहत जनु चहकन।
झरत द्रुमन सों सुमन सोरभित डारनि हलिहलि।
मनहुँ देत वनथली तोहि स्वागत पुष्पाञ्जलि।
निरखि चहूँ छवि पुञ्ज लगत जनु यह मनभावन।
कुञ्ज बिहारी कुञ्जन सों कढ़ि चाहत आवन ॥ १६०

परम नीक रमनीक सुखद नित नव मंगल प्रद।
अमित अमल प्राकृतिक छटा सो प्रमुदित गदगद।

सजल सफल अति सरल सकल सुरनरमुनि मोहति।
कलित ललित तृन हरित संकुलित वसुधा सोहति।
खेचर भूचर जलचर तृण तरु सब के गातन।
उठति अमन्द तरंग हृदय आनन्द समात न।
गान तान रस सान जान जिय जनु जग जाचन।
प्रकृति कामिनी तन उघारि चाहति चहुँ नाचन।
तेरी सुन्दरताई भाई जो सब के मन।
मुख सो बरनि न जाई छाई सामी नैनन॥१७०
यद्यपि कवियन गाई पाई ताकी थाह न।
मनही मनहि समाई आई नहि अवगाहन।
रह्यो अछूतो गुनि गन हू सों जब तव गुन घन।
कहा हमारे बूतो देखहु जासो गुनि मन।
तउ तव सोभा-सुखद बिसद-सुठि पद-मय दरपन।
करत सत्यनारायण जन तुम्हरे ही अरपन॥१७६

४

मन भामिनि दामिनि हे घनश्याम कहौ तुमको निज अंक लगावै।
जिय मोद भरयो गन चातक को मिलिवे तुमसों अनुरागत आवै।
मृदु दावन सो पुरवाई कहौ श्रम खोइ तिहारो प्रमोद बढ़ावै।
तुम जात जहाँ जहाँ मजु ललाम छटा सुर चाप तवै सरसावै॥

५

नव चारु तमाल से ये घनश्याम घने बदरा घहरान लगे।
अरु सीर समीर सने नवनीरन के कन ये बरसान लगे।
सुर चाप छयो, मदमत्त सबै मुरवा-गन बागनु गान लगे।
परि कैसे लखौं इन ओर चहूँ जब प्यारी, तबै दिसि प्रान लगे॥

६

वह वेतस-वेलि प्रसून सुवासित-कुजनि मे नदी नीर नयौ।
तट ही तट देखिये जाही-जुही-कलिकानु सो जो अति मंजु भयौ।
खिले कूटज फूल उमंगित शैल के शृङ्गनु मानौ प्रहास ठयौ।
तिन पै मुरवान के नाचन कों बदरान अनूप वितान छयौ॥

७

अब पुष्पित साल औ अर्जुन को मद पूरब पौन हू लावन लागे।
तिन वेग सों इन्द्रमनी सम श्यामल ये धुरवा-गन धावन लागे।
श्रम अम्बु सुखावन लावन की छवि मंजु मिलाइ रसावन लागे।
महकात मही नव बूँदनु सो बरसा-ऋतु वासर आवन लागे॥

८

अति ऊँचे उठे जिह शृङ्गनु पै घनश्याम-घटा छवि छाइ रही।
अरु मोदमयी मदमत्त मयूरी निरन्तर कूक मचाइ रही।
खग नीड विचित्र धरें तरु पंगति जा-तन-शोभा बढ़ाइ रही।
सुखमा सों सनी अस पर्वत माल मनोहर नैननि भाइ रही॥

—मालती माधव

धीर समीर

१

सकल थल विहरत हौ तुम पौन।
भेटि प्रिया अंग अंगनिको फिर मो तन परसत क्यों न।
मदन-मरोर विवस मृग लोचनि उतकंठित दिन रैन।
दुख पावति उत विरह विथित, इत मोहू को नहिं चैन।
मुकुलित कलित कुन्द-कलियन कौ मधुमय जो मकरंद।
संगी तासु कहाइ अहो किन बरसावत आनन्द॥

२

नव ऊँचे उठे अरविन्दनु मे मकरन्द की पुष्ट जो गन्ध बसै।
तिहि धारि अपार उमंग भरयो अग अंगनि को सुखमा परसै।
कबहूँ जड सो बनि सीरी सलोनी तरंगनि को रस जो विलसै।
रसिया यह धीर समीर वही पुनि तो नवजीवन को सरसै॥

३

सुखप्रद उच्च अटानि-झरोखे झाँकि झिझकि फिरि आवै।
संग उमंग भरी मदिरा का मद सुगन्ध उड़ावै।
सरस सघन घनसार हार सों अनुपम ताहि बढ़ावै।
तरुणी-तरुण बिहार जतावत धीर समीर सुहावै॥

शरद

१

बोरत प्रेम पयोनिधि में ऋतु शारदी आई दया निज जोरत।
टोरत फोरत ग्रीपम कौ बल बारिद को बल तोरत मोरत।
लोरत खंजन पै सतदेव जू छोरत कांस में सांस बहोरत।
चोरत मंजु चितै चित चायनि चाँदनी चारु पियूष निचोरत॥

२

आओ लखैं छवि शरद की, करि दूरि संशय भूरि।
मिलि लेहि स्वागत तास, जास उजास चहुँघा पूरि।
नहि प्रात बात समात अंग, उमंग हिय अधिकाय।
जलजात-पातनि कोर हिम जलकीय चञ्चल आय।
मालती सौरभ चमेली छिटकि कलिकनि पास।
नदि कूल फूले लखि परत बहु स्वेत स्वेत जु काँस।
जहँ कज विकसत, कुमुद बहु, अरु केतकी कल कुञ्ज।
गुंज कर रस लेत, दीसत रसिक षटपद पुञ्ज।
पिय पीय पपिहा करि रह्यो, अब कहँ मिलै जल-स्वाँति।
उन्नत मुखहिं करि व्योम दिशि नहि लखत मोरन पाँति।
गरद विन छित, शालि सोहत जरद बहु लहरांय।
पङ्कहु नसानी, शङ्क का की? चलहिं सब इतरॉय।
नील निर्मल नभ लसै निशिनाथ मंजु प्रकास।
सुन्दर सरोवर सलिल मे, ता सुघर छाया-भास।

चारु चमकनि चाँदनी चूनर धरैं छबि जाल।
माधुर्य मय शशि जासु मुख उडुगन सुमौक्तिक माल।
नील उत्पल चारु-चख औ चपल लहरी सैन।
मानहुँ चलावति मोहिबे युव जन उरहिं सुख दैन।
सारस सरस नव गान मनु कटि किङ्किणी सरसाय।
रव मत्त बाल मराल नूपुर कलित ध्वनि जनु छाय।
कुसुम कुसुमित काँस के मधु हास शोभा पाय।
ऋतु-शारदी किधौं कामिनी कमनीय यह दरसाय।
"सतदेव" प्रेमिन प्रेम वस टरकाय पावस धाय।
सज्जन दरद-दारक प्रिये! आयो शरद सुखदाय॥

हेमन्त

सुन्दर शोभित सुखद शरद हेमन्तहि भेटी आय।
जैसे बालक देखि माय को गिरै गोद में धाय।
जानि परै जमुना जल पैठत, पैर गये कटि दूर।
'सी सी' करत किनारे आवैं, जाड़ा है भरपूर॥ १
पहले से नहिं कमल खिलैं अब, निशि में परै तुषार।
स्वच्छ सेत-हिमयुक्त हिमाचल दर्शन योग बहार।
सूरज भयो छपा—कर जानो धूप गई पतराय।
मनहुँ शीत भयभीत याहि लखि वारिद लेय छिपाय॥ २
हरित खेतमय गाँवन भीतर हिम कण भीगी दूब।
मटर फली अरु कोमल मूली मीठी लागै खूब॥

ज्वार, बाजरा, मूँग, मसीना, मोठ, रमास, गुवार।
सन, तिल, आदिक, अरहर तजि, सब कटि आये घर द्वार॥ ३

"रबी" जहाँ सींची जावै, तहँ गेहूँ जौ लहरांय।
सरसों सुमन प्रफुल्लित सोहैं, अलि माला मँडरांय।
प्रकृति दुकूल हरा धारण कर, आनन अपना खोल।
हाव भाव मानहुँ बतलावै ठाडी करै कलोल॥ ४

बरहा खोदत श्रमी कृषक वर जल नहिं कहुँ कढ़ि जाय।
खुरपी और फामडा कर गहि क्यारी काटहि धाय।
चरसा गहैं "राम आये" कहि गाय गीत ग्रामीन।
जीवन हेत देत खेतन कहँ जीवन नित्य नवीन॥ ५

सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर।
दिन छीजत, रजनी बाढ़ति जिमि द्रुपद-सुता को चीर।
धुँआ न चैन लैन छिन देवै अश्रु बहावैं नैन।
छाती तले अँगीठी सुलगे ताहि उठावै पै न॥ ६

ज्वाला तापि, दुलाई ओढ़ै रहैं धूप मे जाय।
चाय भरा सविशाला प्याला पीवैं हिय हरषाय।
साल दुसाला धारै निस दिन, गरम मसाला खात।
सीत कसाला भाला उरमे लगै न पाला जात॥ ७

मृगमदादि सौरभ सुख कारक सेवन करै सुहाय।
भोजन समय कम्प तऊ होवै हाथ जाहि ठिठुराय।
पान खाँय डिबिया भर-भर के तबहुँ न कष्ट नसाय।
तरनि तापते तापै बिन कब सीत कसाला जाय? ८

जोगी जती सती सन्यासी कुछ का कुछ रहे गाय।
माड़ादार भृत्य माया का नहिँ जाड़ा यह भाय।
धीरज तकिया देकर प्यारे ओढ़ि रजाई ज्ञान।
रमण कीजिये सद ग्रन्थन मे शान्ति स्त्री मान॥ ९

जावे युवक पाठशाला जब पहन कोट पतलून।
मोजे डाट बूँट खटकावत सीत लगै तऊ दून।
"पैड्रो" अथवा और 'सेगरेट' 'सेफ मैच' से वाल।
इंजन का सा धुआँ उड़ावैं तो भी बुरा हवाल॥ १०

जर-जर देह, दीन जन दुःखित, कंपकंपात बिलखात।
हाट बाट अरु घाट घाट पर माँगत खात लखात।
"अब की कठिन प्राण रक्षा है" कहि कहि के यह बात।
बड़े कसाई, अति दुखदाई, जाड़े से इठि जात॥ ११

निस्सहाय निर्बल इन आरत भारतवासिन ओर।
देश हितैषी धनी धार्मिक फेरौ लोचन कोर।
हे हेमन्त हिमाचल वासी! अधिक कष्ट जनि देहु।
विनय सत्यनारायण की यह इतनी तुम सुनि लेहु॥१२

वन

झर झर झर झरना झरत, जिह गुफानि सब काल।
गोदावरि सरितट मिली, यह सोई गिरिमाल।
जिन कुहरनि गद गद नदति, गोदावरि की धार।
शिखिर श्याम, घन सजल सों, ते दक्खिनी पहार।

करत कुलाहल दूरि सो, चंचल उठत उतंग।
एक दूसरी सों जहाँ खाइ चपेट तरंग।
अति अगाध विलसत सलिल-छटा अटल अभिराम।
मन भावन पावन परम ते सरि-संगम धाम॥

ये गिरि सोई जहाँ मधुरी मदमत्त मयूरनि की धुनि छाई।
या वन में कमनीय मृगानि की लोल कलोलनि डोलनि भाई।
सोहैं सरित्तट धारि घनी जल-बृच्छन की नवनील निकाई।
वंजुल मंजु लतानि की चारु, चुभीली जहाँ सुखमा सरसाई॥

यहिं वेतस-वल्लरी पै खग बैठि, कलोल भरे मृदु बोल सुनावै।
तिनसो झरे पुष्प-सुगन्धित त य. बहैं अति सीतल हीतल भावै।
फल पुज पकेनि के कारन श्यामल मंजुल जम्बु निकुज लखावैं।
उनमें रुकि कें करि घार घनी, झरनानि के स्रोत समूह सुहावैं॥

इन खोहनि मे दल रीछनि को वसि जोवन जोर मरोर जतावै।
गिरि गूँज के सग उमग भरयो, भयकारी धुनी घनघोर मचावै।
कहुँ कुंजर सो रुँदि कुन्दरुकी, कुचिली निज गाँठिन कों दरसावै।
तिनसों कहुँ सीतल और कसेली, चुईरस-गंध चहूँ छितिछावै॥

ये जन स्थान सीमा महान, जहँ सघन गहन वन विद्यमान।
निश्शब्द शांतिमय कहुँ अखंड, वन-जन्तु नाद सों कहुँ प्रचंड।
जहँ लपलपात रसना अपार, सुख सों सोवत अहि फन पसार।
तिन तप्त साँस सन कहुँ विशाल, जरि उठत भयंकर ज्वाल माल।
दे गई भूमि जहँ पै दरार, दीसत कछु कछु जल तिन मझार।
अजगर-श्रम-सीकर भासमान, प्यासे गिरगट तिहि करत पान॥

—उत्तर रामचरित्र

विकसीं नव वेगरी घुण्डिनु सों घनी शोभा कदम्बनु की सरसावै।
गिरि-रम्य-तटी लगि छाइ छटा चहुँघा घनश्याम घटा लहरावै।
सरि-श्रोत के तीर नवीन कढी कलिकानु सों सुन्दर केतकि छावै।
खिले लोध औ छत्रक फूलनि साजि बनी रमनी मुसकाति सुहावै॥

—मालती माधव
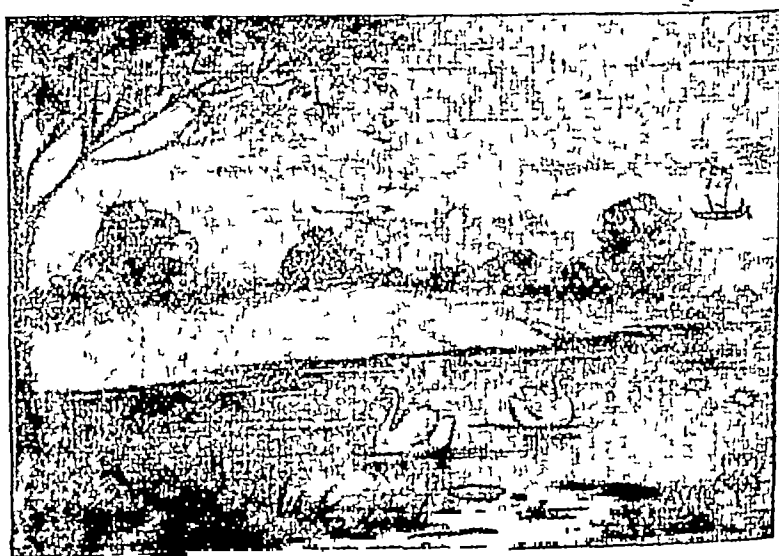
श्री ब्रजभाषा

सजन सरस घनश्याम अब, दीजे रस बरसाय।
जासों ब्रज-भाषा-लता, हरी भरी लहराय॥

श्री व्रजभाषा

श्रीहरिः

भुवन विदित यह यदपि चारु भारत भुवि पावन।
पै रसपूर्न कमंडल व्रजमंडल मनभावन।
परम पुण्यमय प्रकृतिछटा यहँ विधि बिथुराई।
जग सुर मुनि नर मंजु जासु जानत सुघराई।
जिह प्रभाव वस नितनूतन जलधर शोभाधरि।
सफल काम अभिराम सघन घनश्याम आपु हरि।
श्रीपति पदपंकज रज परसत जो पुनीत अति।
आइ जहाँ आनन्द करति अनुभव सहृदय मति।
जुगल चरन अरविन्द ध्यान मकरन्दपान हित।
मुनि मन मुदित मिलिन्द निरन्तर विरमत जहँ नित।

तहँ सुचि सरल सुभाव रुचिर गुनगन के रासी।
भोरे भारे वसत नेह विकसत व्रजवासी।
जिनके उच्च उदारभाव-गिरिसों जग आसा।
जनमी तारनि तरनि कलिन्दिनि यह व्रजभासा।
जासु सरस निरमल जगजीवन जीवन माहीं।
लखियत उज्जल सूर चद की नित परछाहीं।
जिन प्रकाश सो और प्रकासित सुन्दर लहरी।
नित्त नवल रसभरी मनहरी विलसत गहरी।
जिह आश्रय लहि कलिमल हर तुलसी सौरभ यस।
मंजु मधुर मृदु सरस सुगम सुचि हरिजन-सरवस।

केशव अरु मतिराम बिहारी देव अनूपम।
हरिश्चन्द्र से जासु कूल कुसुमित रसालद्रुम।
अष्टछाप अनुपम कदम्ब अघ-ओक निकन्दन।
मुकुलित प्रेमाकुलित सुखद सुरभित जगवन्दन।
तुरत सकल भयहरनि आर्य जागृति जयसानी।
जन मन निज बस करनि लसति पिक भूषन बानी।
विविध रंग रञ्जित मनरजन सुखमा आकर।
सुचि सुगंध के सदम खिले अगनित पदमाकर।
जिन पराग सों चौंकि भ्रमत उत्सुकता प्रेरे।
रहसि रहसि रसखान रसिक अलि गुंज घनेरे।

बरन बरन मे मोहन की प्रतिमूर्ति विराजत।
अक्षर आभा जासु अलौकिक अद्भुत भ्राजत।
सुरपद बरन सुभाव विविध रसमय अति उत्तम।
शुद्ध संस्कृत सुखद आत्मजा अभिनव अनुपम।
देसकाल अनुसार भाव निज व्यक्त करन मे।
मजु मनोहर भाषा या सम कोउ न जग मे।
ईश्वर मानव प्रेम दोउ इकसंग सिखावति।
उज्ज्वल श्यामलधार जुगल यो जोरि मिलावति।
भेदभाव तजिवे की प्रतिभा जब रसऐनी।
योग गहत तिनसों तब सुन्दर बहत त्रिवैनी।

करी जाय यदि जासु परीच्छा सविधि यथारथ।
याही मे सब जग कौ स्वारथ अरु परमारथ।
वरनन को करि सकत भला तिहभाषा-कोटी।
मचलि मचलि जामें मॉगी हरि माखन रोटी।

जाको सो रस अवगाहत जाही में आवै।
कैसोहू गुनवान थाह जाको नहि पावै।
रह्यो यही अवसेस एक आरज जीवनधन।
चिन्तनीय यह विपय तुमनु सो सव सज्जन गन।
वग और महाराष्ट्र सुभग गुजरात देस मे।
अटक कटक पर्य्यन्त कहिय भारत असेस मे।
एक राष्ट्र भाषा की त्रुटि जो पूरत आई।
इतने दिन सो करति रही तुम्हरी सेवकाई।
सत समरथ कवियतु की कविता प्रमान जामे।
निरखहु नयन उघारि कहाँलो सवनु गिनामे।
इकदिन जो माधुर्य्य कान्तिमय सुखद सुहाई।
मंजु मनोहर मूरति जाकी जग जिय भाई।
देखत तुम निश्चिन्त जात जाके अव प्राना।
अभागिनी शोकार्त्त कहहु को तासु समाना?

लिखन रह्यो इक ओर तासु पढ़िवो हू त्यागो।
मातासों मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यो।
शुभ राष्ट्रीय विचारनु को जव पुण्य प्रचारा।
कैसो याके सग किया तुमने उपकारा!!!
रह्यो बनावन याहि राष्ट्रभाषा इक ओरी।
उलटो जासु अनिष्ट करन लागे बरजोरी।
या जीवन सग्राम माहि पावत सहाय सव।
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अव।
क्यों जासों मन फिरयो कृपा करि कछुक जतावौ।
वृथा आतमा या व्रजभापा की न सतावौ।

जिनके तुम बस परे अहहि ते सकल बिमाता।
ब्रजभाषा ही शुद्ध सस्कृत सांची माता।
मातृहृदय को प्रेम मातृहृद ही में आवै।
ताको पावन स्वाद बिमाता कबहुँ न पावै।
टपकावति प्रेमाश्रु पुलकि तन पूत प्रेमसों।
भरि भरि देखत नैन तुमहिं जो नित्यनेम सों।
तिहदिस चितवत नाहिं कहाँ की नीति तिहारी।
पुण्यप्रकृति तजि प्रतिकृति ताकी लगति पियारी।

काज न जब कछु करत शिथिलता तन मे व्यापत।
यही सोचि जननी ब्रजभापा निसिदिन काँपत।
सुत सेवा हित तासु रुचिर रुचि रहत सदाहीं।
जनमे पूत कुपूत कुमाता माता नाहीं।
जाय कहाँ अब. बनहि तुम्हे यहि पाले पोसे।
याका वल याको जीवन वस आप भरोसे।
निरालम्ब, यह अम्ब याहि अवलम्बनु दीजै।
तनसो मनसो धनसो याकी रक्षा कीजै।
यही रहति जननी की केवल नित अभिलाषा।
'सफल होहि तुव सबै उच्च उन्नत प्रिय आशा।
'सकल ओर अभ्युदय सूर्य की किरन प्रकासैं।
'नसहि अविद्या रैनि ज्ञान-नय कमल विकासैं।
'जागृत त्रिविधि बयारि वसन्ती नित सरसावैं।
'निरमल पर-उपकार हृदय मधि लहरि सुहावैं॥
'सोहैं सुजन रसाल प्रेम मजरि चहुँ छाये।
'निज भाषा रुचि लता अङ्क लहि परम सुहाये।

'कवि कोयल सत्काव्य कूक अपनी उच्चारैं।
'गुनि गुनगाहक रसिक भ्रमर मंजुल गुञ्जारैं।
'जगमगाय जातीय प्रेम, सुधरै चरित्र बल।
'सब के हो आदर्श उच्च उत्तम अरु उज्ज्वल।
'विद्याविनय विवेक प्रकृति छवि मनहिं लुभावै।
'दुख को हो बस अन्त, देस भारत सुख पावै।'

❀ ❀ ❀ ❀

परब्रह्म परमातम घट घट अन्तरजामी।
पूरहिं यह अभिलास सत्यनारायण स्वामी॥

हास्य

हास्य

गिरिजा सिन्धुजा सम्बाद

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई श्री गिरि-सुता दुवारे।
विघ्न-विदारण मातु कहाँ ? यह भाख्यो लागि किवारे।
कष्ट-निवारन मंगल-करनी जाके सब गुन गावैं।
मेरे द्वार पास तिहि कारण विघन रहन नहिं पावैं।
कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते करै जो तुव प्रतिपालो ?
होगो वहाँ जाय किन देखो बलि पै परयो कसालो।
गरल-अहारी कहाँ ? बताओ लेहु आप सो लेखो।
बार बार का पूँछति मोको जाय पूतना देखो।
बहुरि पियारी मोहि बताओ भुजँग-नाह परवीनो ?
देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनों।
कहाँ पशुपती मोहि दिखाओ ? गोकुल डगर पधारो।
शैलपती कहँ ? कर में धारैं गोबरधनहि निहारो।
सत्य नरायण हँसि के कमला भीतर चरण पधारै।
अस आमोद प्रमोद दोऊ को हमरे शोक निवारै।

२०—५—३०

कलदार कल्पतरु ।

भज कलदारं भज कलदारं कलदारं भज मूढ़मते ।

खेलत बित्ते दई लरिकाई ।
तरुण भये तरुणी मन भाई ।
वृद्ध वयसि मति गति बौराई ।
विपति हरनि सम्पति न कमाई ।—भज०

शिल्प कला अभ्यास न भायो ।
व्यापारहि ना चित्त लगायो ।
हितू धनी कोउ काम न आयो ।
नाहक बातन जनम गमायो ।।—भज०

कोरी भक्तिऽरु कोरो ज्ञाना ।
कोरी कविता-शक्ति महाना ।
कोरे कण्ठ कुरान पुराना ।
बिना रुपैया नहि सम्माना ।।—भज०

केवल धनी सकल गुन आगर ।
सभा समिति मधि पूर्ण उजागर ।
चंचल चतुर चमत्कृत सुन्दर ।
मनु वसुन्धरा प्रकट पुरन्दर ।।—भज०

जा हित जग नर पढ़ैं पढ़ावे ।
तान सुरीली चहुँ दिसि गावे ।
देश विदेश कुदक कर जावे ।
पै मन मे सन्तोप न पावें ।।—भज०

धन हित रूप कुरूप बनावे।
धन हित तन मे भस्म रमावें।
धन हित लम्बी जटा रखावें।
धन हित पीरे बसन रँगावें।।—भज०

ये ही सब के प्रान बचावै।
दारुण दुःख दरिद्र भगावै।
बाको तू विदेश टरकावै।
रे मतिमन्द न लज्जा आवै।।—भज०

ये ही सुहृद बन्धु प्रिय चाकर।
ये ही कर्म्म धर्म को आकर।
या के बिन सब निपट अनारी।
बात न पूछे प्राण पियारी।।—भज०

ये ही उन्नति शिखर चढ़ावै।
ये ही शान्ताकार बनावै।
ये ही बिपता बिकट नसावै।
ये ही जग मे पॉय पुजावै।।—भज०

तनय कहै यह पिता हमारा।
सन्यौ सनेह सकल परिवारा।
जा बिन मित्रहु ऑख चुरावैं।
सत्वर आनन निरखि दुरावैं।।—भज०

जग अथाह रत्नाकर भारी।
माया सीप समिति हिय हारी ।
परत स्वांति उत्साह अपारा।
प्रगटहि मुक्ता - आविष्कारा ॥—भज०

जनवरी १९०८

प्रशस्ति

प्रशस्ति

श्रीरामतीर्थाष्टक

जय जय ब्रह्मानन्द-मगन जन-मन-हरसावन।
जय अमन्द सुन्दर सनेह रस सुठि सरसावन।
जय विशुद्ध वेदान्त 'व्यास' नय मग दरसावन।
जय सिद्धान्त उजास 'राम-बरसा' बरसावन।
जय पुलकित तन पावन परम प्रफुलित प्रिय प्रेमायतन।
जय जग दुरलभ आचार्य वर आर्य्य रत्न-गर्भा-रतन ॥१॥

जय तपचर्या-उदाहरण मनहरन जु अनुपम।
जय नित नवल उमङ्ग भरन युवकन हिय उत्तम।
जय उदार पर-हित-सुधार-रत भारत प्रियतम।
जय जिय जाननहार राउ अरु रक एक सम।
जय वर विराग अनुराग प्रद, गदगद हिय सत सुहृदवर।
जय पद पद पर स्वातत्र्य प्रिय, विसद प्रेम-पकज-भ्रमर ॥२॥

जय पंजाब-मराल बाल गुन मंजु माल धर।
जयति स्वप्रन-प्रतिपाल सुमति-गति-रुचि रसाल वर।
जय विनोद-व्रत-विमल सुधाकर-कर उज्जल तर।
जय स्वजन्म वसुधा सेवा-रत निरत निरन्तर।
जय भव-भय दारुन दुख हरन भेद हरन तारन तरन।
जय पूरन मृदु स्वर सों 'प्रणव' उच्चारन धारन करन ॥३॥

जय कुभाव-कुल-कदन सरलता-सदन सुहावन।
चारुवदन मन मदन मदन मोहन मन भावन।
जय अगाध रस रङ्गी गङ्गी[1] सङ्गी पावन।
व्रज-व्रजभाषा भक्त भक्ति रस रुचिर रसावन।
जय जग कलोल कर लोल अति गोल चन्द प्रियतम परम।
धृति धरम प्रभाकर नरम हिय हारन भव भय भरम तम ॥४॥

जय प्रन-प्रनय दृढ़ावन दृढ़तर छोह छुड़ावन।
आरज-सुयस बढ़ावन वैदिक ध्वजा उड़ावन।
जय विदेश विद्वान चकित चंचल चित चोरन।
नित अशेष उपदेश प्रचुर पीयूष निचोरन।
भुवि विश्रुत विविध प्रमान जुत दै दै श्रुति परिचय प्रबल।
जय जयकुमार[2] जय पान जिय भारत रति राची नवल ॥५॥

विशद उपनिषद पदम 'अलिफ'[3] षटपद गुंजारन!
सुघर स्वच्छ स्वच्छन्द साधु उद्देश सँवारन।
सुलभ सुजान अमान मनोविज्ञान उधारन।
भारत-दशा सुधारन सब तन मन धन वारन।
जय मन्द-मन्द आनन्द-रस-पारायण पपिया अमद।
जय निरत आत्म-रत सतत सत, सतनारायण हिय सुखद ॥६॥

यह आतम अज अगम अमर अनुपम अरु अक्षय।
तजि यासो सम्बन्ध प्रकृति मे प्रकृति होति लय।

---

१. गंगाजी। २ शालिग्राम-स्वरूप कृष्ण का प्यारा नाम।

३. उर्दू मासिक पत्र।

यो विचारि उर मरम प्रबल प्रगटत इमि निश्चय ।
रामतीर्थ भारतमय भारत रामतीर्थमय ।
कहा मिलन-बिछुरन जबै तुम हममें हम तुममे बसत ।
बस विमल ब्रह्म वैभव विपुल विश्व-व्याप्त केवल लसत ।।७।।

जब लौं देश हितैषिन को भारत मे आदर ।
जब लौं भुवि अखण्ड शङ्कर वेदान्त उजागर ।
जबलौं सुभग स्वदेश भक्ति निश्शेष वसति मन ।
जबलौं जगमग जगत जगत जगमगत प्रेमपन ।
तबलौं निस्संशय रहहि, रामतीर्थ कीरति अमल ।
नित अङ्कित प्रति उर पटल पै, अजर अमर अविचल अटल ।।८।।

श्रीगांधी-स्तव

(१)

जय जय सद्‌गुन सदन अखिल भारत के प्यारे ।
जय जगमधि अनवधि कीरति कल विमल उज्यारे ।
जयति भुवन-विख्यात सहन-प्रतिरोध सुमूरति ।
सज्जन समभ्रातृत्व शान्ति की सुखमय सूरति ।
जय कर्मवीर त्यागी परम आतम त्यागि-विकास-कर ।
जय यस-सुगधि-वितरन करन गांधी मोहनदास वर ।।

(२)

जय परकाज निबाहन कृत बन्दी गृह पावन ।
किन्तु मुदित मन वही भाव मंजुल मनभावन ।

मातृभक्त जातीय भाव-रक्षण के नेमी।
हिन्दी हिन्दू हिन्द देश के साँचे प्रेमी।
निज रिपुहू कौ अपराध नित छमत न कछु शंका धरत।
नव नवनीत समान अस मृदुलभाव जग-हिय हरत॥

(३)

जयति तनय अरु दार सकल परिवार मोह तजि।
एकहि व्रत पावन साधारन ताहि रहे भजि।
जय स्वकार्य तत्परता-रत अरु सहनशील अति।
उदाहरन करतव्य-परायनता के शुचमति।
जय देशभक्ति-आदर्श प्रिय शुद्ध चरित अनुपम अमल।
जय जय जातीय तड़ाग के अभिनव अति कोमल कमल॥

(४)

जय बिपत्ति मे धैर्य्य धरन अविकल अविचल मन।
दृढ़ व्रत शुच निष्कपट दीन दुखियन आस्वासन।
जय निस्स्वारथ दिव्य जोति पावन उज्जलतर।
परमारथ प्रिय प्रेम-बेलि अलबेलि मनोहर।
तुम से बस तुमहीं लसत और कहा कहि चित भरै।
सिवराज प्रताप ऽरु मेजिनी किन-किन सो तुलना करैं॥

(५)

एक ओर अन्याय, स्वार्थ की चिन्ता बाढी।
अत्याचार अपार घृणित निर्दयता ठाढ़ी॥
अपर ओर मनुषत्व स्वत्व की मूरति निर्मल।
कोमल अति कमनीय किन्तु प्रतिपल प्रण अविचल।

यहि देवासुर संग्राम में विदित जगत की नीति है।
बस किंकर्तव्य विमूढ़ बहु भूलि परस्पर प्रीति है॥

(६)

अपुहिं सारथी बने कमलदल आयत लोचन।
अरजुन सो बतरात विहँसि त्रयताप-विमोचन।
धीरज सब विधि देत यही पुनि-पुनि समझावत।
दैन्यपलायन एकहु ना मोहि रन मे भावत।
इक निमितमात्र है तू अहो क्यों निज चित विस्मय धरै।
गोपालकृष्ण मोहन मदन सो तुम्हार रक्षा करै॥

(७)

यहि अवसर जो दियो आत्मबल को तुम परिचय।
लखी निरकुश शक्ति भई मुदमई सत्य जय।
जननी जन्मभूमि भाषा यह आज यथारथ।
पूत सपूत आप जैसो लहि परम कृतारथ।
लखि मोहन मुखचंद तव याके हृदय उमंग है।
त्रयतापहरत मन मुद भरत लहरत भाव तरंग है॥

(८)

निज कोमल वाणी सों हिन्दू जाति जगावौ।
नवजीवन यहि नीरस मानस में उमगावौ।
अब या हिन्दी को सिर निर्भय उच्च उठावौ।
सुभग सुमन याके पद पदमनु चारु चढ़ावौ।
यह नम्र निवेदन आप सों जिनको प्रेम अनन्य है।
ह्वै न्यौछावर तव चरनु पै हम जीवनधन धन्य है॥

रवीन्द्र-वन्दना

जय-जय कवि-कुल-तिलक भारती देवि उपासक।
रुचिर रम्य सद्भाव सुभग कर निकर प्रकासक।
जय-जय भारत-कीर्ति धवल धुज जग फहरावन।
विद्युत इव जातीय प्रेम नस-नस लहरावन।
जय विश्वविदित विजयी प्रमुख सौम्य मूर्ति तव लसत नित।
जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन होत नेह नत चकित चित॥१॥

जय जय सहृदय सदय सुहृद नय नागर नीके।
बिमल बोल अनमोल चखावन हार अमी के।
सुखद 'ब्रह्मविद्यालय' 'शान्तिनिकेतन' थापक।
पुण्य प्रभा प्रतिभा के पूरन प्रियतम ज्ञापक।
जय जयति वंग-साहित्य के उन्नतकर अनुपम अमल।
निज कविताकर विस्तारि वर विकसावन जन हिय कमल॥२॥

सदशिक्षा आराधन 'साधन' गुन गन आगर।
योगी उपयोगी कारज कृत सुफल उजागर।
विशद विवेक विकास प्रकाश करत अति सुन्दर।
महा महिम भुवि कोविद उर अधिवसत पुरन्दर।
यासो मंजु 'रवीन्द्र' तव नाम सुभग सार्थक मधुर।
जग अबके अखिल कवीन मे लसत आप परबीन धुर॥३॥

जैसी करी कृतारथ तुम अँगरेजी भाषा।
तिमि हिन्दी उपकार करहुगे ऐसी आशा।
एक भाव सों रवि ज्यो वस्तुनि वृद्धि प्रदायक।
बरसत सरसत इन्द्र सकल थल त्यो सुरनायक।

'रवि' 'इन्द्र' मिले दोउ एक जहँ, तउ अचरज कैसो अहै।
यह प्यासी हिन्दी चातकी तव रस को तरसत रहै ॥४॥]

धन्य धन्य वह पुण्य भूमि जिन तुम उपजाये।
धन्य धन्य वह निरमल कुल तुमसे सुत जाये।
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे।
धन्य धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे।
अस देहिं दिव्य 'देवेन्द्र' वर करहु देश-सेवा भली।
यह अर्पित तव कर-कमल मे सत्य सुमन गीताञ्जली ॥५॥

श्री तिलक वन्दना

जय जय जय द्विजराज देश के साँचे नायक।
यदपि प्रभासत वक्र, सुधा नवजीवन दायक।
दृग चकोर आराध्य राष्ट्र नभ-प्रतिभा भाषा।
बन्दनीय विस्तार विशारद ज्योत्स्ना आशा।
जय चित पावन सद्भाव सो जग शुभचिन्तक प्रति पलक।
शिव-भारत-भाल-विशाल के लोकमान्य अनुपम तिलक ॥

देश-भक्ति - स्वर्गीय-गङ्ग - आघात-तीव्र तर।
गङ्गाधर सम सह्यो अटल मन तुम गङ्गाधर।
नित स्वदेश हित निर्भय निर्भ्रम नीति प्रकाशक।
जय स्वराज्य संयुक्त-शक्ति के पुण्य उपासक।
जय आत्म-त्याग अनुराग के उज्ज्वल उच्च उदाहरन।
जय शिव-संकल्प स्वरूप शुभ एक मात्र तारन-तरन ॥

कर्मयोग आचार्य्य आर्य आदर्श उजागर।
निर्मल न्याय निकुञ्ज पुञ्ज करुणा के सागर।
सुदृढ़ सिंहगढ़ के सजीव-ध्वज-धर्म धुरधर।
अद्भुत अनुकरणीय प्रेम के प्रकृत पुरन्दर।
प्राणोपम राष्ट्र प्रतापवर, अघ त्रिताप हर सुरसरी।
जय जन-सत्ता के छत्रपति महाराष्ट्र कुल-केसरी॥

मर्यादा-पूरण स्वतंत्रता-प्रियता प्यारी।
प्रकृति मधुर मृदु मंजु सरलता देखि तिहारी।
रोम रोम कृत-कृत्य भयो यह जन्म कृतारथ।
तव दर्शन करि लोचन पायो लाहु यथारथ।
चित होत परम गद्गद्, मुदित जबै विचारत कृत्य तुव।
जय जीवन-जङ्ग-जहाज के जगमगात जातीय ध्रुव॥

धन्य धन्य यह देश जहाँ तुम देश भक्त अस।
जननी जन्मभूमि तन मन धन जीवन सर्वस।
धन्य आगरा नगर धन्य यहँ के बासी जन।
चरण कमल तव दरसि परसि भये जो पुनीत मन।
सत विनय यही जगदीश सों होय मनोरथ तव सफल।
हम हिन्दी पावें विश्व में स्वत्व मानवोचित सकल॥

श्री गोखले

परम पूज्य सतकर्म-निष्ठ नय-नीति सुनागर।
अति उदार चित नित नव ज्ञान प्रकास उजागर।
जासु बचन बरषा सो नवल हृदय लहराये।
आक जवास क्रूर जन पजरे मनहि लजाये।

प्रशस्ति

शिक्षा अनिवार्य प्रचार-हित कृत प्रयत्न पुरुषार्थ पर।
निस्पृह निःस्वारथ द्विजकमल हंस-वंस अवतंस वर ॥१॥

श्री रानाडे शिक्षा की प्रिय प्रतिमा निरमल।
भारतीय-जातीय-समिति-कर प्रभा समुज्ज्वल।
सदा रह्यो दुरभेद्य प्रबल जाको यह निश्चय।
भारत नित ईश्वरमय ईश्वर नित भारतमय।

यो देशभक्ति हरिभक्ति में रचि अभिन्नता चारु तर।
गोपालकृष्ण सत्कथन सो नाम रुचिर चरितार्थ कर ॥२॥

कुली-प्रथा उच्छिन्न करन जिन शक्ति प्रकासी।
जाके अमित कृतज्ञ प्रवासी भारतवासी।
नित प्यारे स्वदेश हित कृत तन मन धन अरपन।
आत्मत्याग आदर्श दूरदर्शी अविचल प्रन।

जिह प्रतिभा गुन शासक सजग शासित समयोचित फले।
जग विदित कर्मयोगी सदय सहृदय श्रीयुत गोखले ॥३॥

अब सो अन्तरध्यान भये पौरुष विकास मे।
जिमि प्रभात की प्रभा मिले पूरन प्रकाश मे।
जननि जन्म भुवि गोद यदपि तिन देह सिरानी।
गूँजति उर नभ अजहुँ दिव्य वह विद्युत बानी।

सम्भव इन घन असुआन सन नेह-लता विस्तीर्ण हो।
अभिनव प्रसून सन्ताप हर महाप्राण अवतीर्ण हो ॥४॥

नहीं गोखले जगत जगत आदर्श पियारौ।
भारत जग जीवन जहाज हित ध्रुव को तारौ।

स्वत्व और अस्तित्व काज जब करत समर हम।
उत्साहित सो करत देत आदेश अनूपम।
निज स्वार्थ भेद बिसराय सब मिलिये करि स्वविरोध-इति।
बिधि वद्ध समुन्नत कीजिये भारतीय-सेवक-समिति ॥५॥

अब तो हिन्दू सकल भेद बन्धन निरवारौ।
विपति जनित निज विषम बेदना बिपुल विचारो।
यदि तुम थापन चहत गोखले कीर्तिस्मारक।
साँचे मन सों तो शिक्षा के बनो प्रचारक।
जिहि लहि चहुँ भारत युवक नवजीवन जागृति संचरैं।
उर अविकल धीरज धारि दृढ़ सत्य देश-सेवा करैं ॥६॥

श्रीसरोजनी-षट्पदी

जय जय सहृदय सदय सुहृद कवि गुन गन आगरि।
नय नागरि प्रिय परम गोखले कीर्ति उजागरि।
कोमल कवित कलाप अलापिनि नित नव नीकी।
तोल बोल अनमोल चखावन हारि अमी की।
जय भेद भाव के हरन को सुकृत सुदृढ़ संकल्प वर।
चित चकित करनि मुद भरनि नित निज दिखाइ प्रतिभा प्रखर ॥१॥

आरज सुजस सुगंध सुहावन विपुल विकासिनि।
विहँसत अधर सुदल सों अनुपम छटा प्रकासिनि।
नव जातीय सरोवर की सुखमा सरसावनि।
प्रेम प्रस्फुटित पुण्य प्रभा प्यारी दरसावनि।
नित मन बच क्रम सो रुचिर तर नूतन भाव प्रयोजनी।
प्रिय यथार्थ चरितार्थ तव यासो नाम "सरोजनी" ॥२॥

लखि तव प्रफुलित दर्स हमारो होत सुनिश्चय।
दुख की बीता रैनि उदित अब सूर्य अभ्युदय।
कर्म भीरु उल्लूक लुकन अब लगे अभागे।
देश भक्त वर भ्रमर भ्रमत गुंजारन लागे।
श्रुति मधुर मुदित द्विज गान को छाइ रह्यो उत्कर्ष है।
अभिनव आभा सों पूर्ण यह देखहु भारतवर्ष है ॥३॥

निरुत्साह हेमन्त और पतझर के मारे।
सके न कछु करि बिबस यहाँ के लोग बिचारे।
असन बसन बिन कम्पत तन अरु अस्फुट भाषा।
किन्तु जियावति तिन्हैं एक बस प्यारी आशा।
ऐसे जीवन-संग्राम मे होवहि वांछित काज है।
क्योंकि सुखद आवन चहत श्री ऋतुराज स्वराज है ॥४॥

भारतीय कोकिल प्रियतम निज कूक सुनावौ।
या स्वदेश में नवजीवन संचार करावौ।
वहु दिन के सुसुप्त को करुणामयी जगावौ।
कल कोमल रसाल वाणी सो याहि उठावौ॥
जासो यहि आर्यावर्त को नष्ट होइ सन्ताप है।
जग जगमगाय नव जोति सो अनुपम प्रबल प्रताप है ॥५॥

धन्य धन्य वह पुण्यभूमि जिन तुम उपजाई।
धन्य धन्य वह कुल जिन तुम सी महिला पाई।
धन्य आगरा नगर जहाँ शुभ चरन पधारे।
धन्य धन्य हमहूँ सब दरसन पाइ तिहारे।
सत् विनय प्रवाहित कीजिये देश-प्रेम-रस की नदी।
बस अर्पित यह तव क्रोड़ मे श्रीसरोजनी-षटपदी ॥६॥

लाला लाजपतिराय

जय निशङ्क निकलङ्क-पूर्ण भारत शशाङ्क वर।
जय नीतिज्ञ सुजान वीर गम्भीर धीर वर।
जयति परीक्षित सुवरण सुन्दर सुलभ सुहावन।
सकल शुभ्र मन सुमन प्रेम गुन गहन गुहावन।
अग्रवाल-प्रिय अग्रवाल सौरभ सरसावन।
कार्य शक्तिमयि देशभक्ति रस चहुँ बरसावन।
परम पुण्य मति पूर्ण आप यश सो अनुरागत।
प्रियतम लजपतिराय सुखद सब विधि तव स्वागत॥
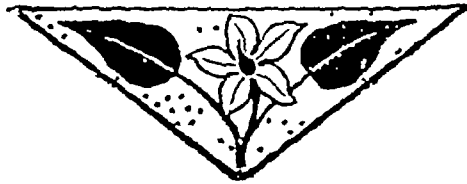
कविता कुंज

कविता कुंज

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

था इक दिन, जब नृपति-नीति से कंस डिगा था।
आर्य-प्रजा पर करने अत्याचार लगा था।
कोई धर्माचरण नहीं होने पाता था।
सुख से कोई कभी नहीं सोने पाता था।
निश्चिन्त मनाते थे मुदित, आनँद मगल नित्य खल।
अति दुःख उठाते थे दुसह, देश-भक्त सज्जन सकल ॥

बढ़ा यथेच्छाचार लगे जब दुष्ट सताने।
किं-कर्तव्य-विमूढ़ सुजन मन मे दहलाने।
दुख का सुनने वाला जब नृप को नहि पाया।
एक प्राण हो प्रभु से सब ने ध्यान लगाया।
पर बेचैनी बढती गई सब ही को प्रत्येक छिन।
गये इस विधि भादों मास के जैसे तैसे सात दिन ॥

आधी राति अखंड सघन छाई ऑधियारी।
घिरी हुई सब ओर घटा काली कजरारी।
कभी कभी जब बादल पानी बरसाते थे।
टपका कर निज अश्रु वेदना दरसाते थे।
चल कर पल पल चंचल विपुल इधर उधर चमके चपल।
अति घबड़ा अत्याचार से जैसे हो कोई विकल ॥

विविध तरंगाकुल यमुना यद्यपि आती थी।
उमडा कर निज हृदय दुःख को प्रगटाती थी।
मनों सोच जल मे डूबी बहती जाती थी।
कभी भॅवर-भ्रम मे पड़ तट से टकराती थी।
बस जान आर्य-गौरव गया सुधि-बुधि तज बन सोगिनी।
रज तन लपेट रमने लगी मानहुँ कोई जोगिनी॥

रहा सदा से यही हिन्दुओ का दृढ़ निश्चय।
जहॉ धर्म-विश्वास, बास वहॉ करती है जय।
धर्म-भाव को सिथिल जगत मे जब पाते हैं।
लेकर हरि अवतार उसे रखने आते है।
जब जाना श्रीदेवेश ने भक्तजनों को विपद्मय।
झट दिव्य देवकी-गर्भ से किया सदय अपना उदय।

कृष्णचन्द्र ने चन्द्र सदृश हो उदित सुहावन।
छिटका कर निज कीर्त्ति चन्द्रिका जग मनभावन।
न्याय-पक्ष ले दुष्टजनो का दल बल मारा।
कर सज्जन-उद्धार भूमि का भार उतारा।
निजभक्तो को सर्वत्र ही किया छकित बरसा अमी।
इससे ही हुई प्रसिद्ध जग सुखद कृष्ण-जन्माष्टमी॥

अर्जुन को गीतोपदेश देकर मन-भाया।
निर्भय होना कृष्णदेव ने हमे सिखाया।
भाई का भी अत्याचार बुरा बतलाया।
उचित आत्मगौरव रखना यह हमे जताया।
जब आवै सन्मुख स्वत्व का प्रश्न जगत भर मे कहीं।
वहॉ आत्मशक्ति का काम है दॉत दिखाने का नहीं॥

पुरुषोत्तम के गुण उन में पाये जाते हैं।
इससे उनका यश जग में सारे गाते हैं।
वीरों का पूजन ही उर दृढ कर सकता है।
नवजीवन जागृति नस नस में भर सकता है।
इसलिए मनाना चाहिए यह धर्मोत्सव नेम से।
निज भेद-भाव को भूल कर सब को सच्चे प्रेम से ॥

गोबर्धन

सकल नन्द उपनन्द गोप जैसे जुरि आये।
परम चपल घनश्याम सबै यों कहि समझाये।
'मानत क्यों तुम, इन्द्र न जाने कहँ कौ को है।
पूजौ मिलि गिरिराज सुलभ जग जन मन मोहै।'
जहँ नित प्रमुदित गो-कुल चरत सतत हरत त्रय ताप घन।
सब हुलसत सुनि जिनको कथन जय जय जय अस गिरिधरन ॥१

सुनी खबर यह इन्द्र कोप करि व्रज पै आयो।
सहस मूसलाधार मेह वा ने बरसायो।
भरे सरित सर सकल सलिल बसुधा पै छायो।
डूबन लागे नगर, भयो डर, व्रज घबरायो।
हरि ढिंग हेरत टेरत गये कहिये कीजै का जतन।
जिन धीर बँधायो सकल विधि जय जय जय अस गिरिधरन ॥२

देखे आरत जबै पुकारत सब व्रजवासी।
आश्वासन दे सबनि कियो कौतुक अविनासी।
गये गिरिराज समीप अचक ही नख पै धारयो।
सात दिना औ राति तनिक हू नाहिं उतारयो।

सब गोप ग्वाल गोपी गऊ बाल बच्छ रच्छा करन ।।
जो करत पच्छ निज वचन की जय जय जय अस गिरिधरन ।।३

देखो गिरि नख धरे साँवरी सूरति सोहत।
नटवर वरही-पंख-मुकुट की लटक विमोहत।
अधर अधर धर बंसी करहि चलाय बजावत।
विमल बसीकर श्रम सीकर छवि सो मन भावत।
श्रुति मकराकृत कुण्डल कलित ललित बलित बनमाल तन।
जिन कर्‌यो सुदृढ़ कटि पीत पट जय जय जय अस गिरिधरन ।।४

इत उत में उपनन्द नन्द सिर पागहि बाँधे।
संग बाल गोपाल लकुट निज धरि धरि काधे।
करि करि ऊँचो तिनहि सहारो गिरिहि लगावत।
कबहुँ महरि करि महरि श्याम की भुज को दावत।
घबराति मनावति ईश को कबहुँ जोरि दोऊ करन।
जन दृग चकोर मुख चन्द्र जिन जय जय जय अस गिरिधरन ।।५

कर मे इन्द्र निवास खास कर शैल सँवार्‌यो।
यो सब ताको भार देवनायक पै डार्‌यो।
सहि न सक्यो सो भार भयातुर झटपट धायो।
गिर्‌यो कृष्ण-पग आय टेरि-भय रुदन सुनायो।
सुनि क्रन्दन तिह करुणा भर्‌यो हँसि हँसि ता की भय हरन।
जो नंद नँदन नित सरल चित-जय जय जय अस गिरिधरन ।।६

बज्रपाणि हरि ने भुज गहि बज्री समझायो।
गऊ रूप धरनी अरु तिह सम्बन्ध बतायो।
सुखद परस्पर दोउनि की सुखमा जग छाई।
करियो रस बरसाय रसा की सदा सहाई।

यह भुवि तेरी प्रिय आभरन अरु तू है जाको आभरन।
यहि सुनत इन्द्र बिनवन लग्यो जय जय जय अस गिरिधरन ॥७

नित्य पराई पूजा के गाढ़े बन्धन सों।
नन्दादिक जो गोप बँधे दृढ़तर बहु दिन सों।
नसि तिन घन तम भ्रम, प्रतिभा विद्युत लहराई।
दियो आत्म-गौरव कौ जिनको स्वाद चखाई।
नव जीवन ज्योति जगाय के जो जग को तारन तरन।
नित असरन को जो सत सरन जय जय जय अस गिरिधरन ॥८

जय जय त्रिभुवन नाथ जयति जय गर्व-प्रहारी।
जय जय मगल करन कृष्ण बाँके गिरधारी।
माया बस जन जगत अन्य रूपन में रांचे।
किन्तु अनूपम त्रिभुवन मोहन तुम ही सांचे।
नित मुद मंगलमय विनय प्रद सब प्रकार जिनके चरन।
जो ब्रज के सुखदायक परम जय जय जय अस गिरिधरन ॥९

भक्त की भावना।

क्यों मन ऐसो होत अधीर
परम पिता जो जन प्रति पालक उनको तेरी पीर।
कर्मवीर बन अरे बावरे! या जीवन रन माहि—
अपने आप बँध्या बन्धन में ज्यों पिञ्जर में कीर।
जगत जगत, तेरे सोवन को अब यह अवसर नाहिं—
हंस-बुद्धि सों बिलग करहु नित हित, अनहित पयनीर।

है उद्देश आत्म-शासन तब देखि हृदय के बीच—
जग के जाने तू गरीब है वैसे सांचो मीर।
कि-कर्त्तव्य विमूढ़ चेत-हत फँस्यो मोह की कीच—
करि विश्वास सत्य करुणामय अवसि हरहि तव भीर॥

विज्ञान

विमल बीज सो अंकुर, अंकुर सो द्वै दल नव।
द्वै दल सो पौधा, प्रिय पौधा सो द्रुम अभिनव।
द्रुम सो नव-पल्लव, पल्लव सो कली सुहावन।
कली भली सो कुसुम रुचिर विकसत मनभावन।
पुनि कुसुम-कोष सो होत फल, कारण कर्म समान है।
जो प्रगटत यह जग सत्य सो बन्दनीय विज्ञान है॥

———

समुदित जिनकें होत, अतुल छवि लगी प्रदरसन।
सत जन नयन चकोर चारु चित लागे हरसन।
नव पल्लव-संपत्ति धारि फूले चहुँ द्रुमगन।
जानि समय अनुकूल प्रकृति बिहँसी मन ही मन।
द्रुत-दूर होत जिहि दरस सो निशा निराशा-बिपुल भय।
अस सदा सुदृढ़ रक्षा करै श्रीकृष्णचन्द्र पूरण उदय॥

—भाद्रपद सं० १९७४

मृदुल मृदुल जो मंजु फुहारे सुखप्रद बरसत।
श्रम सीकर वर विमल बसीकर आनन सरसत।
मेघ मुरज ठनकावत पिक मृदु मुरलि बजावत।
सिखी नचावत भावत मन उमग उपजावत।
कृत रास रुचिर जन मन हरन तड़ित पीतपट तन धरैं।
श्री प्रकृति-प्रभा घनश्याम अस नितनव सत मगल करैं ॥

—श्रावण १९७२

जो श्रुति-सुपथ-प्रदर्शक, भारत-धर्म उजागर।
चित्ताकर्षक धीर वीर, अनुपम नयनागर।
पुरुषोत्तम आदर्श मात-पितु-आज्ञाकारी।
तजी लोकमत हेत सुतिय सिय सी सुकुमारी।
भुवि-विदित आर्य अनुकूल सत, मर्यादा थापित करन।
जग-जगमगात-जय देहि श्री रामचन्द्र असरन सरन ॥

—कार्तिक १९७४

प्रबन्ध

सब रस गहन प्रयोग युक्त विलसत जामे वर।
शुचि सनेह सों सने हाव औ भाव मनोहर।
उद्धतता सम्पन्न तऊ अनुराग-सूत्रधर।
मधुर-विचित्र-कथानक चित नित-नव अनन्द कर।
जहँ बात बात में सुहृद प्रिय सुठि चातुर्य सुगंध है।
सो उक्त विविध गुन सों गुंथ्यौ अनुपम चारु प्रबन्ध है ॥

—मालती माधव

चतुर

करै ऊपरी मेल सबन सो सुठि बतरावै।
जनु कछु जानत नाहि, धरै अस सरल सुभावै।
सबकी सुने सलाह, चाल निज ऐसी ठानै।
सूछम हू सो भेद जासु बैरी नहिं जानै।
नित प्रगटै अपको अलग तऊ, सकल निभावै प्रिय-परन।
नहि काऊ सो चरचा करै, यही चतुर को आचरन॥

—मालतीमाधव

कालिका

नैन विकराल लाल रसना दसन दोऊ,
दैत्यदल दलन औ दुष्टन की घालिका।
सबै देव मंडल मुनीश शीश नावैं तोहि,
कंठ मे बिराजै महा रुंडन की मालिका।
दोष दुख खंडन को, विघन निकन्दन को,
नवौ निधि नाथ तेरे भक्तन की पालिका।
सत्यदेव देव सुखदायक शरण तेरी,
मेरे दुख देवा को कलेवा करि कालिका।

बसंत बरस्यो परै

फूल रही केतकी कतार की कतार अरु,
गुञ्जरत मधुकर पुञ्ज दरस्यो परै।
अम्बन अनारन कदम्बन को रंग देख,
कोकिला कलाप सुनि सुख सरस्यो परै।

सीतल सुगन्ध मन्द मृदुल पवन अति,
ललित विटप लखि मन हरस्यो परै।
बसन ते बासन ते सुबन सुबासन ते,
बेहड़ ते बन ते बसन्त बरस्यो परै।

नाम न मेरो

झूमत ज्यों मतवारो मतंग,
सो प्रेम की बेलि को होय न चेरो।
ज्ञान को आंकुस मानत ना,
मन मोह-कुपंथ सों जात न फेरो।
'सत्य' जितै ही तितै चलि जात है,
ठीक न ठाक कछू यहि केरो।
कै करुणा करि बाह गहो,
कि कहो करुणानिधि नाम न मेरो ॥

नाम धरायो

रे अलि एतो सँदेश कहो,
मन-मोहन सों हमरो मन भायो।
नेह रच्यो प्रथमै हमसों,
सतदेव जू बात लगाय रिझायो।
बावर बौरी हमें कहि क्यों सु,
जे ऊधो के हाथन सों समुझायो।
गोपिका छाँड़ि अनाथ इतै तऊ,
"गोपिका-नाथ" क्यों नाम धरायो ॥

बात ही निराली है

पौन की सनक, घन सघन ठनक चारु,
चंचला चिलकि सतदेव चहुँ चाली है।
बादर की कड़ी झड़ी लागी चहुँ ओरनुसों,
बोलत पपैया पीउ पीउ प्रण पाली है॥
आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत,
दीरघ अवाज बाज गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात बात खात हरखात गात,
धोए धोए पातन की बात ही निराली है॥

सज्जन

बहुधा प्रिय वृत्ति बिनै-मधुरी-बतियानि सों चारु विचार दृढ़ावै।
पहँचावि अनिन्दित निन्त नई, मति मंगल मोद मई मन भावै।
रस एक अगार पिछार लसै, छल छिद्र बिना त्रय ताप नसावै।
इमि सज्जन-पुण्य चरित्र सदाँ, चहुँ ओर विजै बरसा बरसावै॥

—उत्तर रामचरित्र

तेजधारी

नहि तेजधारी सहत कबहू बढ़त अन्य प्रताप।
यह प्रकृति-जन्य सुभाव उनको अटल अपने आप।
यदि तपत नभ करि सूर्य अविरत किरन कुल विस्तार।
किमि सूर्यमनि अपमान निज गिनि वमत अग्नि अपार॥

—उत्तर रामचरित्र

रूपान्तर

रूपान्तर

सदुपदेश।

वही पडौसी तेरा, जिसकी तू सहाय कर सकता है।
तन से धन से जिसके मन मे प्रसन्नता भर सकता है॥
जिसका हृदय व्यथित अति भारी तप्त ताप से माथ।
परम प्रेम से, परस बँधावे धीरज तेरा हाथ॥ १

वही पडौसी तेरा. जो अति दीन मूर्छित पडा हुआ।
क्षुधा जनित निर्वलता वस जिसकी आँखो मे धुन्ध हुआ॥
अधम पेट जिसको भेजे है बार बार प्रति द्वार।
जाओ करो सहारा देकर उसका बेड़ा पार॥ २

वही पड़ौसी तेरा, जो अति दुर्वल सा थकने वाला।
सारी आयु विता कर जो थोड़े दिन मे मरने वाला॥
चिन्ता पीडा कठिन् रोग से, जिसका झुका शरीर।
जाओ करि उत्साहित उसको, मित्र ! बँधाओ धीर॥३

वही पडौसी तेरा, जिसके उर वियोग पीड़ा भारी।
गँवा सकल प्रिय वस्तु जगत की, जो थी मंजुल मनहारी॥
निस्सहाय विधवा अरु बालक मात पिता से हीन।
जाओ शरणागत-वत्सल हो उनके परम प्रवीन॥४

वही पडौसी तेरा, जो खो स्वतंत्रता, श्रम करता है।
अंग अंग जिसके निर्बल, जी मे निराश हो, डरता है॥
होने की निज पूर्ण लालसा मरण काल पर्य्यन्त।
नही भरोसा जिसे, छुड़ा धन देकर उसे निचन्त॥५

जहाँ कहीं जब कभी मित्र तुम किसी आदमी को पाओ।
जो तुमसा नहि भागवान, उसके कुभाग को चमकाओ॥
ध्यान रखो वह भी है तव प्रतिवासी कीट पतंग।
जैसे भ्राता पुत्र आदि सब और आप के अंग॥६

हा! अपने अल्हड़पन मे आ, उसे त्यागकर, मत जाओ।
शोकातुर का शोक निवारण करने तुम प्रियवर धाओ॥
बटै कदाचित उस दुखिया की हृदय विथा, लखि तव अनुराग।
जाओ, कंठ लगाओ उसको, बाटो प्यारे अपना भाग॥७

स्वदेशानुराग

अस मन मारयो कहूँ रहै कोऊ जन।
कबहुँ न जाने कह्यो सोचि अपने मन॥
'है मेरो यह स्वयं जन्म को प्रिय-थल"।
उमग्यो ना यह समझि जासु हिय इक पल॥
जैसे पलटत घरहिं कबहुँ निज पामन।
भ्रमत भ्रमत परदेसन सों तहँ आमन॥
यदि कोऊ अस, ताहि लखौ भल जाकर।
ता हित गाव न कोइ प्रेम में आ कर॥
यद्यपि पदवी बड़ी नाम बड़ ताके।
इच्छा पूर्वक बहु असीम धन जाके॥

तदुपरान्त पदवी, धन, बल एकत्रित।
करत रहत नित अधम तऊ सब निज हित॥
जीवत हू शुभ यश को नाश करावहि।
भोगहि दुगनी मृत्यु अधोगति पावहि॥
मिलहि तुच्छ रज माँहि जहाँ सो आयौ।
अनरोदित अरु अनादरित अनगायो॥

—स्काट

सरिता

कहौ मोहि समुझाय सरित तुम सुन्दर।
बहत कहाँ ते बारि तुम्हारो झरझर॥
कहो कहाँ को प्रिय घूमती डोलै।
ऐसी क्यों शोकित चलै और अति हौलै॥

जन्म भूमि मेरी है शैल।
पालन हार बूँद अपरैल।
सोता बना हिंडोला मोर।
आच्छादित वन पुष्पन जोर॥

भगी वहाँ से मैं इक बारा।
होकर हठी चौड़हा नारा।
वा दिन मैंने करी किलोल।
खेली भूधर नीचे डोल॥

हरित उपज के तीर बीच मम नीर सुहावन।
लेत झकोरे जाय प्रसूनों पर मनभावन।

मुझे मनौं सुन्दर अधरो से लगे बुलाने।
पुष्पित सुघर अपार अपनि क्यारिन महँ आने॥

पर वह भड़कीले दृश्य हाय सब बीते।
अब चंचल तरल तरग बहे मम रीते॥
और परैं सिन्धु के बैन कान मे आकर।
होगा अब मेरा अन्त वहीं पर जाकर॥

शशिमुखि ! भवन गवन अब कीजै।
गहन ग्रहन बेला नगिचानी सजनी रजनी भीजै।
प्रबल बेगसों राहु केतु मिलि चन्द्र ग्रसन को आवैं।
मुख मयंक अकलंक निरखि कहुँ तिहि तजि तव दिस धावैं॥

सहृदय प्यारी !
'मृत्यु पराजित होत प्रेम सो' निश्चय जानन हारी।
वीरासन ह्वै भूपति पति को लै भुज-लता सहारे।
व्रण सों विष चूस्यो लगाय जिन मधुराधर अरुणारे।
कलित कोकनद कलिका कोमल नवल छटा छिटकावै।
जिमि वसंत में 'सत' सौरभ सो गरल ताप विनसावै॥

—टेनीसन

तव कीर्त्ति-मरालिनि सिन्धुहि जाइ
तहाँ बड़वानल सों चकराई।
निज ताप निवारन ऊपर कों
घबराइ सुधाकर ओर सिधाई।
पुनि मानि कलङ्कित सोऊ तज्यो
खिसियाइ बडी धुनि घोर मचाई।
उचिटाये सुधाकन जो पर भारि
भये सब तारे अकास में जाई॥

भगवन्! मेरा देश जगाना।
स्वतन्त्रता के उसी स्वर्ग में, जहाँ क्लेश नही पाना॥
रुचे जहाँ मनको निर्भय हो ऊँचा शीश उठाना।
मिलै बिना कुछ भेद-भावके सबको ज्ञान-खज़ाना॥
तंग घरेलू दीवारो का बुना न ताना-बाना।
इसीलिए बच गया जहाँ का पृथक्-पृथक् हो जाना॥
सदा सत्य की गहराई से शब्दमात्र का आना।
पूरणता की ओर यत्न का जहाँ भुजा फैलाना॥
विमल विवेक सुलभ श्रोते का जो रसपूर्ण सुहाना।
रूढ़ि भयानक मरुस्थली में जहाँ नहीं छिप जाना॥
जहाँ उदारशील भावो का भावै निन अपनाना।
सच्चे कर्मयोग मे प्रतिजन सीखे चित्त लगाना॥

आर्शीवाद

विलसहि नित सुकृत संत, पापनु को होइ अन्त,
राजै नृप धर्मवंत, सतत न्याय-कारी।
सीखे उपकार करनु, सब जन निज भेद हरनु,
दारिद-दुख-दोष दरनु, जीवन संचारी॥
बरसे घन सघन छाय, यथा समय आय आय,
जासों भुवि लहलहाय, सस्य रासि धारी।
सुधरे कलुषित चरित्र, उदय भाव हों पवित्र,
लहि सुराज सत्य मित्र, हो प्रजा सुखारी॥

—भवभूति

द्वितीय खण्ड

मंगलाचरण

मंगलाचरण

१

जय जय विपति-विभंजन माधव, जन-मन-रंजन प्यारे।
सौख्य-साज-साजन नित प्रियतम, लाज निबाहन हारे।
दीन-दरिद्-दुख दारुन दारन बारन-तारन स्वामी।
वार न लावत, आवत सुन जन-टेर गरुड़ के स्वामी॥

जगमय तुम अरु तुममय यह जग, पावन घट-घट वासी।
वर विनोद बरसावन-भावन बासुदेव अविनासी।
विश्व विपुल यह नाटक साला रंग-विरंगी भावै।
तव गुन नाद-निनाद-वाद्य प्रिय 'नेति-नेति' श्रुति गावै॥

मनमोहन विद्या-प्रकास चहुँ सोहत सुखद ललामा।
जो दरसावत खेल सपूरन, पूरन जन-मन-कामा।
पूरब ऋषि-मुनि सब के पूरब नान्दी पाठ उचारैं।
मंजु-मधुर बानी सौं नित नव मंगल वर विस्तारैं॥

अव्यय, अखिल, अनूप, अलौकिक, लीलामय करतारा।
जग-नाटक संकेत-सूत्र कर तुम ही सूत्तर-धारा।
हम सब प्रानी नाट्यपात्र हैं, पुनि-पुनि या मधि आवैं।
जब-जब जीवन उठति जवनिका निज-निज खेल दिखावैं॥

भाग्य-डोरि प्रभु हाथ अगोचर तुमहि सकल आधारा।
यह कछु होत दृष्टि गोचर जो तव माया-कृत सारा।
तुमहीं सों यह प्रगटि तुमहि मे विस्व विलय ह्वै जावै।
टूटत घट, जिमि जल-अन्तरगत-बिम्ब सूर्य मे धावै॥

तुमहि जगत के ज्ञान-प्रभाकर. निरत अमल गुण धामा।
करत प्रफुल्लित परसि मृदुल कर हृदय-कमल अभिरामा।
अति अगाध गम्भीर आपकौ महिमा-पारावारा।
परिमित गुन. परिमित मति के हम, का विधि पावै पारा॥

जासौ बनहि स्वधर्म-परायन इती कृपा प्रभु कीजै।
उचित और अनुचित मे अन्तर करन विसद बुधि दीजै।
तव पद-पदमन निरत रहे नित, यह चित-षटपद चंचल।
करहु प्रदान यही वर माँगत 'सत्य' पसार सुअंचल॥

११-१०-१९१२

२

सकल जगत की पूज्य आशप्रद प्रभा प्रकासिनि।
दुःख पाश उन्मुक्त करनि आनन्द विकासिनि।
जगमगात चहुँ दिव्य तेज खल पुंज विदारिनि।
ब्रह्मचारिनी भक्त तारिनी भव भय हारिनि॥

नभ जल थल चर अरु अचर मे अखिलव्यापिनी तव गती।
नित होउ हमनु पै सदय सत स्वयमृशक्ति श्री भगवती॥

आश्विन १९७२

३

परम पिशाची प्रकृति हिरणकश्यप सहारन।
निरुत्साह घनखम्भ विदारन धृतिवल धारन।
नवजीवन सचारन पावन प्रेम प्रचारन।
सत प्रहलाद उधारन तारन विपति निवारन॥
नित कुत्सित रीति जु होलिका, दग्ध ताहि कर मुद भरैं।
अस श्रीनरसिंह वसत प्रभु सकल भाँति मगल करैं॥

चैत्र सम्वत १९७३

४

राम नाम

मगल करन कलिमल को हरनहार
पावन को पावन सुहावन ललाम है।
ब्रह्मपद पावन को जो कोऊ पथिक वर
ताको मग टोसा प्रान पोसा सुखधाम है।
कवि वर वैन विसराम-ऐन एक चारु,
जगत सजन जन जीवन सुदाम है।
धरम-विटप वीज सतत तिहारो लसै,
भूति प्रद मग अभिराम राम नाम है॥

५

अव्यक्त अद्भुत अजेय अनन्त नाम।
आनन्द कन्द जु अलौकिक पुण्य-ग्राम।
विज्ञान-पुञ्ज करुणा-रस प्रेम-धाम।
लीजो सप्रेम इत हरि मम प्रणाम॥

क्यों नाथ, बात जु कहा, कछुहू बतावौ।
दुःखार्त्त-भारत-बिथा मन जो न लावौ।
दे धीर जासु सब पीर न क्यों नसावौ।
कोरे कृपालु जग-जीवन के कहावौ॥

कैसैं करी प्रबल ग्राह-ग्रस्यौ, उबारयौ।
कैसैं जु द्रौपद-सुचीरहि कौ सम्हारयौ।
कैसैं बताउँ प्रहलाद-कलेस टारयौ।
कैसैं निकृष्ट नर-नीच निषाद तारयौ॥

साँची, कहौ, यदि सबै तव ये कथाएँ।
तो क्यो, हरी, हरत ना यहँ की बिथाएँ।
टेरैं, तऊ सुनत नाहिं बिपत्ति भारी।
दीयौ स्वभाव दुख-हारन का बिसारी॥

भेज्यौ कहूँ प्रतिनिधी* प्रिय पुत्र आप।
मेंटे जहाँ जनन के त्रय ताप पाप।
ह्वै भक्त-प्रेम बस भारत भूमि भारे।
देवेश आपुहिं यहाँ कृपया पधारे॥

सो ही निबाहि निज नेह, यहाँ कहा ये।
प्लेगादि रोग दुर्भिच्छ महा पठाये।

*इस देश की भूमि पवित्र कहे जाने का यह भी एक कारण है कि भगवान कहीं अपने पुत्र को भेजते हैं और कहीं दूतो से ही काम लेते हैं, परन्तु इस देश में वे स्वयं अवतीर्ण होकर लीला करते हैं।

आछौ निबाह ब्रजराज गुपाल कीयौ !
पूर्णेन्दु प्रेम अपने महँ दोष दीयौ !!

माता-पिता सुहृद और सुबन्धु जाकौ।
तू ही सुज्ञान नय तर्क वितर्क जाकौ।
जाकौ कला कलित कौसल तू सदा कौ।
यौं, तासु त्याग, कहु नेम प्रभो ! कहाँ कौ ॥

क्यों जगत कौ प्रथम भूषण ये बनायौ ?
ऐसौ उठाय पुनि नाथ ! जु क्यों गिरायौ ?
आपुहि लगाय तरु काटत कौन ताकौ ?
तू ही प्रभो ! सकल जानत भेद जाकौ ॥

६

मंगलमय सुनिये इतनी विनय हमारी।
कीजे निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी।
जासो यह जगविद्रोह अनल बुझि जावै।
सुख-शांति मधुर फल यह मानवकुल पावै।
सतपथ में नहिं दुर्नीति प्रपच अड़ावै।
सबके उर समता भाव पवित्र समावै।
होय न वसुधा पै भार पाप को भारी।
कीजे निज अनुपम दया भक्त-भय-हारी ॥ १ ॥

स्वारथ और स्वेच्छाचार यहाँ सौं भागै।
सुचि नव जीवन की जोति हृदय में जागै।

प्रिय बन्धु परस्पर पुण्य-प्रेम मे पागै।
नित सदाचार व्यवहार करन मे लागैं।
निज देश दशा कौ समझैं लोग अनारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय हारी ॥ २ ॥

आतम-गौरव कौ भाव जगत बिस्तारै।
चहुँ सुमति-प्रभा प्रगटाइ कुमति कौ टारै।
शुभ भव्य भविष्यत आशा जिय में धारै।
प्रिय हिन्द देश, हिन्दी-भाषा उद्धारैं।
घर-घर नहि छावै बैर—बदरिया कारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी ॥ ३ ॥

अपनी पूँजी से हम ब्यौपार बढ़ावै।
उपयोगी देशी सकल पदार्थ बनावै।
उन ही कौ बरतै रुचि सौ रुचिर कहावै।
लखि और न कोऊ भृकुटी बृथा चढ़ावै।
बस हो कबहूँ नहि, यहाँ किसान दुखारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी ॥ ४ ॥

लरिबे सुतन्त्रता - हेत वीर जब जावै।
रन सौं मुख मोरि न कुलहिं कलङ्क लगावै।
निज-रिपु-दल-बल हनि, सकल न्याय दरसावै।
नव भारत-कीरति-लता विमल लहरावै।
भुवि वीर जायँ जासौं उन पै बलिहारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त भक्त-भय-हारी ॥ ५ ॥

हों उज्ज्वल उच्च उदार मंजु अभिलाखें।
कबहूँ नहि अपनी हम मर्यादा नाखैं।
सज-धज सब देसी वही पुरानी राखैं।
सुन्दर सुराज कौ स्वाद निरन्तर चाखैं।
नस-नस नव जागृति-जोति सत्य संचारी।
कीजै निज अनुपम दया, भक्त-भय-हारी ॥ ६ ॥

७

हित करिके नेह निभैयो, घट के अन्तरजामी ॥
जब गजराज ग्राह ने घेरयो, हारि हिये प्रभु तुम को टेरयो।
केवल दया धारि नहि हेरयो, आये गरुड के गामी।
द्रोपदि कौरव बीच पुकारी, हाय! नाथ मम होत उघारी।
चीर राखि तुम लिये उबारी, किरपा सिन्धु अकामी।
ध्रुव जी अरु प्रह्लाद पियारे व्याध निषाद निकृष्ट उधारे।
गणिका अजामिलादिक तारे, तारे पतित अति नामी।
पतित विख्यात स्वामि! मोहि जानौ, अपने सम अपरहि नहि मानो।
सतनारायण पार लगावौ, नाथ नमामि नमामी ॥

२७-९-०३

८

अहो श्याम सुन्दर कहँ? प्यारे! लकुट मुरलिया वारे।
मोर मुकट झख कुडल धारे, मो मन मोहन हारे ॥
सब गुण आगर जय नट-नागर कटि कसि पीत पिछौरी।
खेलत लोनी आँख मिचोनी ग्वाल संग मे दौरी ॥

दाव स्थान कपट कर छूवत झगडत लिपट पियारे।
भाजि भाजि कर सींग दिखावत कबहु बिरावन वारे॥
छकि कर चुल्लू छाछि, नित नये गोपिन नाच दिखावै।
'भैया टेरहि, त्यागहु, त्यागहु" दे धोखो कढ़ि आवै॥

मित्र सुदामा अरु श्रीदामा कान्हर गाय चरैया।
धूल धूसरित जुलफनि वारे बलदाऊ के भैया॥
प्यारे बालमुकन्द कृष्ण कबहूँ वे दिन फिर ऐहैं।
हाथ लकुटिया मटकि मटकि कर तो सँग धेनु चरैहैं॥

तू तो बहुत बुलावत, हमही आवत ना तो पाहीं।
चोरी करिवो हमहि सिखावहि, यह तेरे मन माहीं॥
मैं तै मोरि मोरि मन योगी काम क्रोध को जीती।
तेरे मारे ले वन भागे, सब सो छॉड़ि पिरीती॥

व्हॉ पर हू धोरे धोपर मे, डाको डारत प्यारे।
प्रेम-अश्रु टपटप टपकावत, पाछे फिरत विचारे॥
अहो श्याम का नीति तिहारी, तिनको मन तिन दीजै।
दे गलबैयां घूम-घुमैयॉ, हम को निरभय कीजै॥

हम को नेह रंग मे रचिके हमरो मन मति लेहू।
जब मॉगे अपनो मन दीजै औ निज देहु सनेहू॥
निज जन जानि हमै मधुसूदन! भक्ति आपनी दीजै।
करि दाया निज प्यारी माया, नाथ अलग करि लीजै॥

दे चरणन अनुराग निज, मेटहु भव की ताप।
कहा स्वामि बिनती करो जानत हो तुम आप॥

९

श्री देव्यास्तुति

नमस्ते धीरूपे अगति गति रूपे अकपटी।
प्रिये आत्मारूपे चिरथिर स्वरूपे चटपटी।
मनोहारी प्यारी कटि कलित सारी जु लपटी।
जु हैं ग्रस्ता व्याधी जग, तिनहिं मृत्युञ्जय बटी ॥१

रसीली सावित्री परम चमकीली सुखमयी।
भवानी कल्यानी सब हित सुधानी छबिछयी।
अनन्ते आधारे तब गुण पसारे गुणमयी।
वरे हस्तावीणे अति अमल नारायणि नयी ॥२

अनौखी नौका तू भव उदधि सो पार करनी।
अपर्णे बाराही सकल भय की तू सु हरनी।
महाविद्ये सौम्ये प्रकट सबको मां निडरनी।
मृडानी सर्वानी शिव-प्रणय-पात्री शिखरनी ॥३

अहा पैनी छैनी त्रय तपनि की मा अति भली।
दया दैनी नैनी कमल पिक बैनी नव कली।
सबै गर्दे मर्दे असुर असि लै मातु मचली।
स्वधे स्वाहे लक्ष्मी दुखदरनि हेमाचल-लली ॥४

तुही सूत्रं देवी मन सुमन तो सो गुहि रहे।
तुही सर्वे ज्योती, सब थल प्रकाशा तव अहे।
कराला जो व्याला-दुख गरुड रूपे गहति हो।
महा ज्वाला-माले, भव जनित व्याधी दहति हो ॥५

सती मुख्ये तू ही रविकर जु शंका निकर कों।
हिमाजा ईशानी हिमकर अशान्ती प्रसर को।
तुही है चैतन्ये जग-जड़हि चैतन्य करनी।
सदाचारे श्रेष्ठे श्रुतिविदित-आभा-प्रसरनी ॥६

कराले पिंगाक्षी जन बिपतिहंत्री सुखकरा।
प्रशस्ते सौन्दर्य्ये खलदल दलन्ती दुख हरा।
प्रवीणे त्रैगुण्ये रुचिरमति कल्याण करणी।
सितांगे पिंगाक्षी परम रसिका नील वरणी ॥७

शिवानी रुद्रानी भुवन-त्रय रानी भगवती।
गुणागारे सारे अगम जु अपारे बलवती।
मृगेन्द्रारूढ़े मा सकल बिधि गूढ़ा तव गती।
नहीं पावैं ध्यावैं नित गुन जु गावैं बहुमती ॥८

अशेषा शेषा के फन मुरक ते भार-धरती।
पताले सो जाती धसि प्रलय की वन्हि बरती।
सबै वेदाकारा नसि धरम धारा न भरती।
प्रचन्डी चन्डी जो न खल दल सो युद्ध करती ॥९

कहाँ लो हौ गाऊँ तव यश जु चारयो दिशि छयो।
लखी तेरी माया प्रचलित तितै ही जित गयो।
भयी सर्वे रूपा जगत सब देवी तुव-मयो।
नमो शान्ताकारा सब तजि पदाश्रा तव लयो ॥१०

सुबाल्यावस्था मे निरत रत क्रीड़ा यह रह्यो।
युवावस्था मे मा मद-मदन पीड़ा नित दह्यो।

भये वृद्धा चेष्टा प्रगट जगधन्धा रचि करे।
न कीयो मा तेरो भजन कछु, योंही पचि मरे ॥११

न जान्यो आचारा, जठर भरिवो ही नित पढ़े।
बिचारा जे खोटे सब विधि बुरे ते चित चढ़े।
न ज्ञाना ध्याना, मा, गुण कथन तेरो नहि बन्यो।
न चर्चा अर्चा ही नहि सुरस प्रीती तव सन्यो ॥१२

किये स्नाना ना परि सलिल तो पै न थरप्यो।
सु नैवेद्य पुष्प भगति मह तो को न अरप्यो।
दयाब्धे वात्सल्ये तरल जग-धारा प्रबल है।
परी नौका, बल्ली कर गहहु, तेरो हि बल है ॥१३

बड़ो रागी द्वेषी पद कमल तेरे नहि लग्यो।
सुशीले श्री गर्भे कबहुँ तब पूजा नहि पग्यो।
नयी बाला देखी तिनहि हित सारे जग खग्यो।
जहाँ देखी भक्ती तब चरण ह्वां सो डरि भग्यो ॥१४

दिना जा सो ध्याना-रवि, जननि तेरो विसरिगो।
तभी सों अज्ञाना घन तम चहूँगा वगरिगो।
फिरैं मारे मारे सत पथ न कोऊ अनुसरैं।
मिलै कैसे माता बिन चरण तेरे उर धरैं ॥१५

अपर्णे अव्यक्ते परम शिव प्यारी अभय दे।
सहस्राक्षी कृष्णे जगतमयि तू ही विजय दे।
तिहारी ही दुर्गे शरणागत ह्वै के अब परयो।
करो रक्षा पूर्णे नित रहत ध्याना तव धरयो ॥१६

भुजंगा संसारा विष विषय भारी जु उगिलै।
डस्या जाने ऐसो मन शरण नाही कहुँ मिलै।
करो यंत्रा मंत्रा स्वपद्-हित जासों यह किलै।
शिवे याकी तृष्णा-द्रुम गहि पछारो नहिं हिलै ॥१७

अहो मा ये लोका स्वपन इव निद्रे लखतु है।
विषैले जे काजा ततफल फणिन्द्रे महतु है।
खुलै आँखैं हाथै मलत कछु नाहीं लहतु है।
वता इच्छे तेरे पद पदम क्यों ना गहतु है ॥१८

जगज्जाला पूर्यो मन मृग इतै आइ जु फँस्यो।
विषै की तांती सों सुदृढ़ करि माता यह गस्यो।
महा चिन्ता ज्वाला-ज्वलित नहिं शान्ती-जल पिये।
सुवर्णे हा माये तव प्रणयहीना किम जिये ॥१९

तरी मोहा घाटी तरुणि-कुच-ऊँचे गिरन की।
दुराशा शाखा पै नट इव कला खा फिरन की।
सुराराध्ये ये मो हृदयकपि की है नटखटी।
स्वभक्ती में याको गहि करु अधीना शिव नटी ॥२०

वड़ो मैं अज्ञानी सकल अघखानी उर वसी।
रहै मा सर्वज्ञे विषय अभिलाषा अनघ सी।
सदा ये बुद्धी मा वसति जग मिथ्या रंग रँगी।
हृदे हा मेरे मे तव चरण प्रीती नहिं जगी ॥२१

त्रियाब्धी सौन्दर्य्य जल अति अगाधा जहँ भर्यो।
अयं चेतो मत्स भ्रमत भ्रम मांही तहँ पर्यो।

स्तनौ तुम्बी युक्ता अलकमय जाला पुरि रह्या।
करो रक्षा व्याधा-मनसिज शिवे चाहत गह्यो ॥२२

मठारैंगे मोपै हँस हँस कहैंगे "बड़ कच्यो।
'जु पै भारी रोयो निज विपति भारा नहि पच्यो।
'स्वमाता सो ऐसो अनुचित कह्यो ना कछु जँच्यो।"
कहो कोऊ कैसो अब जननि तेरे रँग रच्यो ॥२३

प्रिये कृष्ण-प्राणे रुकमिणि सनाढ्ये सरस्वती।
सती भामे-वृन्दे-शिरमणि सती औ जयवती।
विशालाक्षी देवी कर कमल माये जनकजे।
सुधीरे श्रीकण्ठे चहुँ विजय तेरे पद भजे ॥२४

अहो मा सृष्टी को सृजि थित बिनासा करति तू।
महामाये दाये सकल मन भाये भरति तू।
ध्रुवे ध्री कैवल्ये सुखकरणि श्रीशाकर प्रिये।
अमोली दै नित्ये निजचरण भक्ती मम हिये ॥२५

लगे तो पूजा मे रहत नहि दूजा चहत है।
मुनि ज्ञानी ध्यानी सकल जन मानी कहत है।
असारी ससारी मद-अनल में जे दहत हैं।
लवांध्री ध्याये सो परमपद माता लहत हैं ॥२६

प्रसन्ने श्री दुर्गे नव पुहुप माला उर लसै।
दिपै टीका नीका मिलत फल जी का जब हँसै।
यही मांगों तेरी भयहरणि मूर्ती मन बसै।
नमो ह्रीं सर्वेशे नित चहत गायो तव जसै ॥२७

गुणातीते सीते निरमल अमीते सुगति दे।
हरा बाधे राधे करु सुख अगाधे सुमति दे।
करैं विद्याभ्यासा नित कवि विलासा सुरति दे।
अचिन्त्ये पद्मस्थे पद पदम की मा सु-रति दे ॥२८

न जानौं मै रीती प्रवल कविता के करन की।
न ऐसी मो प्रीती जप तप सु-नेमा-धरन की।
क्षमा कीजो दीजो सुबुधि जग-धारा तरन मे।
रखो, सत्यानारायण नित स्वकीया शरन मे ॥२९

असंख्या तो नामा निखिल जग मे को गिनि सकै ?
अनेका तो रूपा चतुर नर को जो भनि सकै ?
जवै ना छोटे से सर जलहिं पारा करि सकौं।
कथं पारावारा तव गुण अपारा तरि सकौं ॥३०

मेरी जु है पद्य सुपद्म माला।
गुही त्वदीय गुण सो रसाला।
स्वीकार याको करि चन्द्रकान्ते।
स्वभक्ति दीजै मम हीय शान्ते ॥३१

—सं० १९६१

१०

शिव ताण्डव स्तोत्र ।

जटा-अरण्य तें झरी सुगंग-वारि-धार सों।
पवित्र कण्ठ साजि जो भुजंग तुंग हार सों।
डमड-डमड डमन्निनाद जास डामरू करै।
वही गिरीश नाचि नाचि मोद मो हिये भरै॥ १

जटानि की सटानि माहिं गंग भूलती भ्रमै।
लता-तरंग-तोय तास जास माथ मे रमै।
प्रज्वाल ज्वाल जास भाल में धगद् धगद् दहै।
किशोर-चन्द्र-चूड़ में सनेह मो सदा रहै॥ २

बँध्यो सप्रेम जो सदा गिरीन्द्रजा-विलास को।
सुनैन तास पेखि कैं प्रसन्न जीय जास को।
कृपा-कटाक्ष-कोर जास, घोर आपदा हरै।
वही दिगम्बरी स्वरूप मो विनोद कों करै॥ ३

जटानि की सुपीत जो फणी-मणी-प्रभाहि लै।
सु कीच कुंकुमा मनौ दिशावधू-मुखै मलै।
मतंग मत्त दैत्य-चर्म-वस्त्र सों तनै गसै।
वही सुभूतनाथ मो हिए अनन्द को रसै॥ ४

ललाट बीच जासु के कढ़ै सुवन्हि की झरैं।
कराल मार छार कीय इन्द्र पास जा परैं।
सुधाकरीय-रेख सोहती सुभाल जास पै।
वही कपालि गंगजूट हों दयाल दास पै॥ ५

सहस्र लोचनादि देव-पुष्प-क्रीट सो झरी।
सुधूरि जास पाद-भूमि को करै सुधूसरी।
भुजंगराजमाल सों जटानि-जूट को कसै।
सनेह ऐस चन्द्र-भाल को सदा हृदै बसै॥ ६

विशाल भाल बीच में धगद् धगद् धगज् जरै।
हुताश, ताहि माहि जो मनोज आहुती करै।
उरोज-अग्र गौरि के विचित्र चित्र जो रचै।
त्रिनैन ऐस रूप की सुभक्ति जीय मो गचै॥ ७

नवीन मेघ की घटा-घिरी-निशार्ध-मावसी।
प्रध्वान्त तुल्य जास कण्ठ की छवी हिये बसी।
गयन्द चर्म्म ओढ़ि कैं स्व-शीश गंग जो धरै।
वही सुधान्शु-मौलि शम्भु सम्पदाहि विस्तरै॥ ८

प्रफुल्ल नील कञ्ज पुञ्ज कालिमा-प्रभा बसै।
सुकण्ठ, नीलकण्ठ-ग्रीव जाहिसो भली लसै।
स्मरारि औ पुरारि औ गजारि मृत्युनाशनै।
भजौ यमारि अन्धकार विश्व-भै-विनाशनै॥ ९

उमा सुमंगल -कला-कदम्ब-मञ्जरी भली।
प्रफुल्ल माधुरी-रस-प्रवाह को व्रती अली।
स्मरारि औ पुरारि चण्ड दक्ष-यज्ञ को अरी।
भजौ यमारि अन्धकारि जक्त भीति को हरी॥१०

प्रचंड जुवेग सो फिरै कराल व्याल फुङ्करैं।
सु त्योजु त्योजु ज्वाल की झरैं सुभाल पै जरैं।

धिमि धिमि करै मृदग तासु मंगल-ध्वनी।
क्रमानुसार नृत्यकार की रहै बिजै बनी ॥११

पषान पुष्प सेज में भुजंग मुक्त-माल मे।
सुरत्न रेत-पिण्ड में अमित्र मित्र-जाल में।
तृणाऽरिविन्दनैन में प्रजा महीप में सजौं।
कबै समान भाव, हीय शङ्करै सदा भजौं ॥१२

कबै सुगंग तीर कुञ्ज मे कुटीर छाय कै।
शिरै जु राखि अञ्जली स्वदुर्मती बिहाय कैं।
बिलोल लोल लोचना शिवाललाट में लग्यो।
"शिवेति" मन्त्र को रटौं सदा सनेह सो पग्यो ॥१३

सुरेन्द्र-अप्सरानि-शीश-गुच्छ-मल्लिकानि सै।
झरे पराग सों मिल्यो प्रस्वेद देह जा लसै।
बढ़यो सु ताहि सो अपार कान्ति पुञ्ज जो झरै।
निशा दिना जु मो हिये वही प्रमोद सञ्चरै ॥१४

कराल वाड़वाग्नि-रूप-कष्ट-पुञ्ज जो दरैं।
महाष्ट-सिद्धि-कामिनी मिली सुमंगलै करैं।
सशम्भु वाम नैन गौरि व्याह की ध्वनी धजै।
"शिवेति" मन्त्र मुख्य सो करै जु विश्व की बिजै ॥१५

करै जु पाठ "ॐ नम: शिवाय" जुक्त जास कौ।
सदां हरैं कलेश-पुञ्ज चन्द्रचूड तास कौ।
प्रवीन पीन-प्रेम के प्रकाश सों हियो भरैं।
वँधाइ धीर 'सत्यदेव' पीर भीर कों हरैं ॥१६

पूजा सर्ग सरस रावण काव्यमाला।
जो नित्त ही पढ़हि भजन प्रदोष काला।
गौरीश नाहि गज द्रव्य तुरंग नाना।
देवै सदा मन जासु यथा प्रमाना ॥१७

११

शिव महिम्न स्तोत्र

पावन परम तव महिमा को पारावार,
अगम अपार कोउ पार यदि पावै ना।
आचरज कहा, क्यों कि ब्रह्मादिक हू की गिरा,
थिरकि तुम्हार गुन गान गन गावै ना।
निज निज मति अनुसार जो करौं उचार,
सफल सफल कछु दूषन दिखावै ना।
शङ्कर! विनय मम कथित विभूषन तौं,
सत्य जग अपवाद औगुन जनावै ना ॥१॥

बानी मन गम्य का को नाहि आप सों इतर,
पञ्चभूत-जन्य यह सकल संसार है।
किन्तु मञ्जु मृदु तव सुजस सरस अति,
मन वच करम अगोचर अपार है।
वेद भेद जाने बिन विपुल चकित चित,
निहँचे सकत कर, तासु ना अधार है।
कौन सों बरनि जाइ, कौन विधि गुन्यो जाइ,
अकथित जग जासु विषय प्रकार है ॥२॥

सोभित सुछन्द-लरी भूषित पियूष भरी,
कोमल अमल कल चारु रस सानी है।
शम्भु जू हरै न औ करै न आचरज तव,
मन सुर गुरु बानी जगत बखानी है।
आप गुन सागर नै नागर सकल विधि,
बूतौ न हृदय मम निहँचे समानी है।
मनमथ मथन तो गुन कों कथन करि,
बानी होइ पावन सुप्रिय. जिय ठानी है ॥३॥

तो विरद वर्ननीय तीन वेद सों वरद,
जग को जो थिति लय पालन करन है।
वैभव लसत तव सत रज तम मय
त्रिवरग दैन दुःख द्वन्द कौ दरन है।
मन्दमति कोऊ कलपित कहि जाहि,
पहरावत प्रचुर मिथ्या दोष आभरन है।
संभव न दोष तव ऐश्वरज निरमल,
पै सोई अभागो निज सुकृत हरन है ॥४॥

कहाँ कौन तन सो, उपाइ कहौ किन सो,
सृजत किन कारन सों विधि क्यो अनंत लोक।
ऐसी कुतरक तव पूरन विभव मधि,
करत अजान जडमति नित अघ ओक।
अमित अखंड तव अचल प्रभाव प्रभो,
ताकर प्रभाव को सकत कोऊ कैसे रोक।
सामां लोक सृजनु की चाहिये न कछु तहाँ,
केवल प्रताप वल विरचै सवै अटोक ॥५॥

अवयव सहित भू आदि जो हैं लोक सब,
ते हैं का स्वयं उतपति-वान मानियै।
मानि लेहि यदि यह तऊ बिन करता के,
संभव न जग सृष्टि विधि अनुमानियै।
अथवा अनीस निरमित जे भुवन सब,
कौन कौन सामग्री समेटि तहँ आनियै।
जासो जग-करन तिहारे होन मे जो जन,
संशय करत ताहि मतिमंद जानियै ॥६॥

वेद न्याय सांख्य शास्त्र पुनि शैव वैष्णव ये,
पाँचो मत मन भिन्न भिन्न रुच भावतीं।
किन्तु तुम सब के हो एक पूज्य परिणाम,
प्रेमधाम भज तोहि तरक विलावनीं।
ज्ञान-तंत रसवंत राखतु मही अनंत,
तुम मे सकल मति मग नित धावतीं।
जैसे न्यारी न्यारी नदी सरल कुटिल पथ—
गामिनि मुदित अन्त सिन्धु में समावतीं ॥७॥

भूतनाथ ! अति बूढ़ो बरद धरै सुन्याल,
अंगनि वभूत दंड औ कपाल भ्राजही।
मंत्रविद ! तन्त्र उपकरन तिहारे यह,
किन्तु देत जग को विभूति अनयास ही।
भोगो क्यों न अपु तुम समरथवान है कैं,
सब ते बड़ो ही जग आचरज है यही।
आतम रमत परमातम तिन्हैं विषम—
विषै मृग तृष्णा नाहिं भूलि के भ्रमावही ॥८॥

कोउ कोउ मतिवान कहत जगहि ध्रुव,
कोऊ कोऊ अध्रुव ही मानि के बखाने हैं।
चल औ अचल जाहि अपर बतावत है,
किन्तु वे प्रमान सब दुविधा समाने हैं।
याही चला-चली भ्रम-पूरित विषय मधि,
थंभित अचम्भित सो लज्जा उर आने हैं।
किन्तु ढीठ बकवादी वानी तव रस सानी,
प्रस्तुति करत अति मोद मन माने हैं ॥९॥

लखन तिहारे वर वैभव को आदि अन्त
यत्न सो विरंचि हरि सुरग पताल गये।
तेज वायु पुंज युत रावरो स्वरूप लखि,
विन ओर छोर लहि मन विस्मित भये।
पुनि दोउ वैठि, उर तुमहिं मनाइ निज,
विनय करन लागे पूरे प्रेम सो छये।
विफल कभू ना होति गिरीशि तिहारी सेवा,
शंका श्रम दूर कर दरस तिन्हैं दये ॥१०॥

दस भाल जो पुरारि विन पुरुषारथहि,
रिपुन हराइ जीत्यो त्रिभुवन आप है।
मारि सुरासर वस कीन अति दीन करि,
छायो लोक लोकनु अपार तेज ताप है।
समर-खुजारि-परवस धारि भुज निज,
अभय प्रभाव पूर्यो प्रगट सदाप है।
यह भाल-कंज-माल सो मप्रेम जास कृत,
तव पद पंकज सुपूजन प्रताप है ॥११॥

प्रबल प्रचण्ड तप करन के कारन सो,
भुजन को पुंज अति घोर बल पायो है।
आपके समेत हर आपको सुवासथल,
कलित कैलास इन सहज उठायो है।
एते पै जो रावन की कछु न बड़ाई भई,
लोक परलोक जास अपजस छायो है।
हेतु यह, बढ़ि नीच सज्जन दया को पाइ,
इतराइ मन नित ओछो ही कहायो है ॥१२॥
अंग मे अनंग छार सुठि भाल बाल-चन्द,
सोहत जयति, गंगधार रस-भीनौ है।
ऐसो रूप ध्याइ पद पूजन प्रताप पाइ,
त्रिभुवन बानासुर बस कर लीनौ है।
अचरज कहा यदि सुन्दर पुरन्दर की,
पदवी को प्रगट निरादर जो कीनौ है।
वामदेव रावरे चरन जिन सीस नायो,
नेह सो मुदित तिन सरवस दीनौ है ॥१३॥
कंचन कुधर रई बासुकी की नेती गहि,
सुरासर दोऊ जब सिन्धु लागे मथने।
प्रगट्यो प्रचण्ड रूप प्रबल हलाहल जो,
ताके तेज तीछन के मारे लागे जरने।
असमै प्रलय गुनि व्याकुल विपुल जिय,
जीव आस तजि तव पास लागे भजने।
ता छिन अकोप धारयो कालकूट कंठ निज,
नीलमनि लखि ओप ताकी लागे लजने ॥१४॥

जाके सर पैने लगि त्रिभुवन-वासिन के,
तन मन बेधि निज करत प्रबल पीर।
साधारन देव जान तुम पै सो कंदरप,
सदरप वार कियो मानि अपने को वीर।
तासु मान मद मथ सहज त्रिलोचन जू,
मद-न बनायो सांचो छार करि ता सरीर।
बसी की हँसी करे सो अपुही मरत मूढ़,
बहत यही है जासो सीख सीतल समीर ॥१५॥

ताण्डव करत शिव जब जग रच्छन कों,
पदन की धमक पताल धरा धसि जात।
ऊपर को तुंग भुज परिघ घुमावत में,
विष्णु पद प्रबल नखत टलमल जात।
सीस जटा लटनि सबद सटकारे सुनि,
थिरकि थिरकि बेर बेर नाकि रहि जात।
टेढी खीर प्रभुता तिहारी है प्रभो परम,
तरल तरंग तास काहू पै न जानी जात ॥१६॥

तारागन फेन-जुत-सलिल-प्रवाह सुठि,
विस्तरित व्योम व्यापि जो अथाह छायो है।
आप सीस पर गवरीस सोई राजत है,
ओस कन जिमि कंज दल में सुहायो है।
पै उतेक बन बन्यो पारावार कंकन सो,
दीपाकार जगत चहूंघा घेरि आयो है।
जासन करन जोग अनमित दिव्य तव,
दीरघ अमित तन जन मन भायो है ॥१७॥

धरा को बनाइ रथ, सूर चन्द्र चक्र जुग,
चतुर विरंचि निज सारथी रच्यो विचारि।
हिमवत परवत चाप पै चढ़ाइ इन,
परित्यंचा निज चक्रपानि चण्ड को सम्हारि।
तिनुका समान अति तुच्छ त्रिपुरासुर पै,
चढ्यो कोऊ कहत वृथा ही एतो ठाठ धारि।
कुमति न जानत कि शिव स्व-अमोघ-बल.
लीला ही दिखायो सरसायो जग मे पसारि ॥१८॥

पूजन चरन तव गुन-ग्राम घनश्याम,
सहस कमल लै कनक थारी धरै आन।
आसन पै ज्यो ही अरचन चरचन बैठे,
घट्यो एक कोकनद अवरेख भक्तिमान।
ताही छिन नैन-कज कर-कंज सो निकारि,
कंज-नैन पूरन सहस कीये मोद मान।
राखत कुचक्र सो सुदरसन चक्र सम,
सोई भक्ति त्रयलोक निरत विराजमान ॥१९॥

यज्ञफल-दैन, मैन-रिपु आपही को एक,
जान जन वेदनि भरोसे कर्म को करै।
क्रिया-रूप यज्ञ जब पूरन विमल होत,
आपुही तुम्हारो रूप विस्वरूप संचरै।
'करम ही देत फल' कोऊ जो कहै कदापि,
करम पुरुष बिन संभव न ये परै।
जासो नाना अभिमत जगत मे देनहार,
शंकर उदार नित्त पीर भीर कों हरै ॥२०॥

क्रिया-दत्त दत्त-प्रजापति सो चतुर चारु,
स्वामी देहधारिन को जैसो यजमान है।
गुनी मुनी मंजुल बनाये जहाँ आचारज,
सभासद सुभग स्वयम्भू के समान हैं।
तौहू अति आचरज धीर वीर भद्रवीर,
भंग कियो मख लूटि सकल सामान है।
यज्ञ-फल-देन हारे आदर तिहारे बिन
होत सब जग कर्म विफल प्रमान है ॥२१॥

काम-वस विधि निज दुहिता पिछार धायो,
मृगी बनि भाजी वे हू भाजे मृग-रूप धार।
लखि कें अनीति नाथ ! कर ले कोदंड सर,
मारन मृगहिं लागे करि धर्म को विचार।
तबै उर हारि झकमारि भाज्यो प्रजानाथ
व्याकुल विपन्न भयभीत स्वर्ग के मँझार।
धनुवान आपके सजन रखवारी हेत,
देत दुरजन को बड़ी ही कड़ी दुतकार ॥२२॥

छार कियो मदन अतन तुम, पुनि आधौ,
अतनहिं तन दै स्ववपु में लिया मिलाइ।
रूप-मतवारी प्यारी तव लखि निज मन,
बिभचारी ब्रह्मचारी हर को लिये दृढ़ाइ।
क्यों तो मार छार कियो पुनि क्यो उधार कियो,
रीझि किमि ताकों आधे तन मे लियो समाइ।
भोरी भारी जाया महामाया यह आप ही की,
अगम अपार तव महिमा न जानी जाइ ॥२३॥

तन मे चिता की भस्म कंठ मुंडन की माल,
भूषन भुजंग साजि मंजुल बनायो है।
संग मे वैताल प्रेत दै दै झनकीली ताल,
समसान कीड़ा थल असुच सुहायो है।
निपट अमंगल के साजे साज बाज सवै,
तो हू भूत-भावन स्वरूप मन भायो है।
मंगल को सागर मुदागर भगत हेतु,
ध्याये तैं अनन्द कन्द नित वेद गायो है ॥ २४॥

प्रान-पौन रोकि चित चंचल ठैराइ ठीक,
अकथ अचल तत्व जोगी जाहि ध्यावे है।
छके रोम रोम ता अनन्द सो प्रसन्न मुख,
नैन निरमल नेह नीर मे डुबावे हैं।
भक्ति सुधासार उर वसुधा बहाइ निज,
जन्म जाल जोनि पाप-पुंज बिनसावे है।
मोक्षप्रद सोई तव दिव्य रूप रावरो है,
पाइ जा दरस जग जिय हुलसावे है ॥२५॥

रवि ससि वायु नीर अग्नि अवनी अकास,
आदि जड चेतन जो वस्तु दरसात हैं।
ते सबै प्रकासमान आप रूप ही सों ईस,
परिपक्क मतिमान मन की ये बात हैं।
कह्यो करौ कोऊ भिन्न भिन्न भाँति सो बनाइ,
इन ओर ध्यान कोर हमरी न जात हैं।
दीसत जगत को पदारथ न हमैं कोऊ,
जामें तव अरथ स्वरूप न सुहात हैं ॥२६॥

अच्छर अ-कार आदि वरन सपूरन जो,
स्वरित उदात्त अनुदात्त में समानौ है।
सुरग महीतल पताल तल व्यापि रह्यो,
विधि हरि रुद्र रूप जा स्वरूप सानौ है।
निर्गुन निरविकार निखिल निरंजन जे,
जनमन-रंजन तुरीय तव बानौ है।
पृथक पृथक ताहि गहत मिलत पुनि,
करत प्रणव सोई तव गुन गानौ है ॥२७॥

"भव" सों सृजत भव, "शर्व" सों नसत ताहि।
"रुद्र" सो रुदन तुम ठानत अपार हौ।
पालन को "पशुपति" औ "सह महान" सन,
परम विशिष्ट तत्त्वमूल के अधार हौ।
"उग्र" सों सरोस बनि दुष्ट दल घालत हौ,
वैभव "ईशान" सो बढ़ावत अछार हौ।
भीम सों भयंकर विदित आठ नाम धारि,
मन अभिराम छित शंकर उदार हौ ॥२८॥

दूरि हू सों दूरि जो नगीच है नगीच हू के,
लघु सों अतीव लघु सूछम अकाम है।
महत महत हू सों बाल युव वृद्ध वैस,
धरत निरत गुनग्राम छविधाम है।
तत्त्वमसि रूप त्रिनयन किरपा-अयन,
व्यापक सकल थल सोहत ललाम है।
अक्रदम पावन सुहावन सकल विधि,
मृत्युञ्जय पूज्य पद पदम प्रनाम है ॥२९॥

जगत उदय काल वैभव को जाल छाइ,
रजोगुन-पुंज-जुत भव को नमो नमः।
खेल मात्र ताहि संहरत रोस सो भरत,
तमोगुन के निकुंज हर को नमो नमः।
मनोहारी भारी जग जन-मन-सुखकारी
सतोगुन-गुंजधारी मृड को नमो नमः।
भोगत परम पद अमद रहत नित,
तीनो गुन सों बिलग शिव को नमो नमः ॥३०॥

कहाँ ये अचेत चेत राग द्वेष मोह सन्यो,
जड़ता बिबस क्लेस भोगत असेस है।
कहाँ तेरो गुन सो परे में महिमा मरम,
परम अथाह परवाह रस देस है।
जे हिये विचारि भीत कम्पित चकित मन,
तव गुन हेरत प्रवीनता - न लेस है।
भक्ति शक्ति मोहि दीनी वाक्य पुष्पमाल सन,
पुजवाये तव पद पदम विसेस है ॥३१॥

कज्जल पहार डारि जल-निधि वारि बीच,
घोरि घोरि मंजु मसि भाजन भराइ ले।
रुचिर सँवारि सुठि विस्तरित अचला के,
खोलि खोलि परत सु पत्तिरा सजाइ ले।
सुन्दर पुरन्दर के नन्दन सुकानन सों,
पारिजात की उपार लेखनी बनाइ ले।
लहि एती सम्पदा सदा ही लिखे सारदा जो,
गाइ ले न तव गुन पार कों न पाइ ले ॥३२॥

पुष्पदन्त विरचित हर महिमा की गाथ.
हरत सदा जो जन मन को विषाद है।
पढ़त सनेह, मोद भरत, करत सुख,
विहरत हृदय पसारत प्रह्लाद है।
जितने शिवस्तोत्र सब में सिरोमनि जे,
गुनिगन स्वीकृत विषय निरवाद है।
ताकौ सत्यनारायण द्वारा सुठि सम्पादित,
मंजु मनहरन विसद अनुवाद है ॥३३॥

१२

विश्वरूप-दर्शन

(भगवद्‌गीता के आधार पर अ० ११ श्लो० १५-२५)

देह तव मधि, देव ! देखौं पूर्णता सों आज।
अखिल विश्व विशाल के बहु विविध जीव समाज।
सुर, ईस कमलासन विराजत जगत-पितु सतभाय।
ऋषि, मुनी, अरु तक्षकादिक, दिव्य फनि-समुदाय ॥ १ ॥

अगणित भुजा अरु उदर आनन, नयन जास अनूप।
अस आपकौं मैं लखहुँ, पूरन चहुँ अनन्त स्वरूप।
दीसे न जाके, आदि मध्यऽरु अन्त को कहुँ लेश।
अस विस्व-व्यापक रूप देखौं नाथ तव विश्वेश ॥ २ ॥

चमकत मुकट सिर, कर गदा, अरु चक्र आभावान।
चहुँ ओर सों, जनु तेज की जगमगत ज्योति प्रधान।
ज्वाल किम्बा सूर्य की दुति अप्रमेय लखाय।
देखहुँ दरस तव जो कठिनता सन निहारयौ जाय ॥ ३ ॥

तुमहिं अक्षर ब्रह्म पूरन वेदितव्य विचित्र।
तुमहि जग के परम आश्रय एकमात्र, पवित्र।
तुमहिं अव्यय नित सनातन-धर्म के प्रतिपाल।
मेरे मते तुमहीं सनातन पुरुष सद्-गुन-माल॥ ४

उतपत्ति-थिति-लय रहित तुमही अमित बल के ऐन।
बाहु अगनित लसत तव, रजनीस सूरज नैन।
तेजमय तव मुख लखौं जनु दीप्त अनिलाकार।
कढ़ि किरन जिह की चहुँ तपावत जगत को अनिवार॥ ५

आकाश, भुवि, यह लखत जेतिक अन्तरिक्ष अपार।
सब दिसिन में बस इक तुम्हरे तेज को विसतार।
तव उग्र अदभुत रूप लखि, भयभीत अति घबरात।
पावत विथा तिहुँ लोक के भगवन सबै दरसात॥ ६।

सकल देव-समूह आवत तो शरण में नाथ।
आरत पुकारत, कोउ तुमको सभय जोरत हाथ।
स्वस्तियन-युत बहु प्रकारन सिद्ध-ऋषि-मुनि-वृन्द।
करत तव अभ्यर्थना सब गाइ प्रस्तुति छन्द॥ ७।

रुद्र. वसु, आदित्य, विश्वेदेव साध्य, समीर।
अश्विनी युग्मज, पितर, गन्धर्व, यक्ष, सुवीर।
असुर, सिद्ध-समूह जेतिक जगत मांहि लखात।
सबहिं के सब तुमहिं हेरत परम अचरज खात॥ ८॥

अगनित दृगानन धरत जो अरु उदर जासु अनेक।
-भुज, पद, महाबाहो! न जाके ज्ञाति मोहि कितेक।

मंगलाचरण

ऊर्जित परम अस रूप तव वहु डाढ़ सन विकराल।
लखि लोक सब, मै हूँ तथा, पावत बिथा यहि काल ॥ ९ ॥

आकाश-चुम्बत जगमगत द्युति वरन वरनाकार।
विवृत आनन, नयन दीरघ, तेजयुक्त अपार।
अस लखि तुमहिं मम हृदय चंचल लहत भारी पीर।
शान्ति गई कितकों न जानें, छाँड़ि मोहि अधीर ॥१०॥

वहु डाढ़ सन विकराल प्रलयानल प्रवल अनुहारि।
आनन अनेकनि अति भयंकर अव त्वदीय निहारि।
दिसि-भूल सौं, सुधि बुधि हिरानी हृदय धरकत आज।
देवेश होहु प्रसन्न, जग के आदि अरु अधिराज ॥११॥

देश-दशा

देश-दशा

१

भारत बन्दना

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान।
नयन का तारा हिन्दुस्तान।।

वो ही बस घनश्याम की, स्वाति-बूँद रस-ऐन।
चाहे उसको ही विकल, हम पपिया दिन-रैन।।
चैन बस देवै उसका गान।।

वो ही रस का सार है, निरमल नित्य नवीन।
प्रकृति मधुर सुन्दर सरल, हम हैं उसकी मीन।।
दीन का वह जीवन-धन-प्रान।।

२

करुणा क्रन्दन

कौनै सुनाउँ अपनो दुख हाय जाई।
ना तात मात प्रिय भ्रात परै लखाई।
डारी अपार ममता तजि मित्र सारी।
कोऊ न आवत ढिंगै. लखि के दुखारी।।१

कोऊ दिना वह रह्यो जगभूप सारे।
आये सभीत पद-सेवन दर्प मारे।
नाये स्वक्रीट रुख देखत जा अगारी।
सोई सदैव अब दीन, दया भिखारी।।२

उच्चाति-उच्च पद जास सदा सुहायौ।
गम्भीर धीर अति वीर समस्त गायौ।
नीचेहु बैठन कहूँ तिहि ठौर नाहीं।
अत्यन्त भीरु बनि रोवत जीय माहीं ॥३

जाग्यो जहाँ सुभग सुन्दर साम-गान।
चर्चा चली विमल सोचत शास्त्र-ज्ञान।
गावैं तहाँ वटु सदा गनिका-कहानी।
झूठी कथानि रुचि राखत मोद-मानी ॥४

श्री श्री कणाद शुक जैमिनि व्यास शिष्ट।
दाता दधीच भृगु गौतम औ वशिष्ठ।
ब्रह्मण्य देव कपिलादिक जो अमानी।
हा! हा!! पवित्र तिनकी सुकथा भुलानी ॥५

स्वच्छन्द संस्कृत करयो जहँ पै विकास।
छायो समस्त जग उज्जल ता-उजास।
ताको विहाय जु असस्कृत अन्य भाषा।
देखें पढ़ें तब बढ़ै कस हीय आशा ॥६

सर्वत्र दीपत रहे जहँ अग्नि-कुण्ड।
सम्मान संग बहु दान दिये बितुण्ड।
दीसैं तहाँ चिलम चुरुट विराजमान।
कल्यान-यान सम पावन पीकदान ॥७

हर्षे जहाँ सकल सज्जन-दर्श पाइ।
भारी विचार "ढिग नीच न बैठि जाइ"।
जी सों तहाँ लखत बार-बधूनि चित्र।
तिनके गहैं चरण, बात बड़ी विचित्र ॥८

जा की कृपा वस बँध्यो दृढ राम-सेतु ।
कल्याण-दा कल प्रदर्शनि-कीर्ति-केतु ।
प्राणातिरिक्त मम शिल्प-कला पियारी ।
कोऊ न लेइ सुधि डोलति हाय मारी ॥९

जो भ्रातृ-भक्ति यहँ की चहुँ ओर छाई ।
विद्रोह नासनि विकासनि सन्मिताई ।
ताको निकार सँग मत्सर आइ भारे ।
घोरे विरोध वल सो अपने नगारे ॥१०

जा धर्म के जपत, पाप त्रिताप नासैं ।
सद्भाव प्रेम हिय में रुचि सो प्रकासै ।
दुर्भाग्य सो अपन सद्गुण हाय भूल ।
सो धर्म भौ कलह क्रोध विरोध-मूल ॥११

जो कोउ देश हित वात कहूँ चलावै ।
विक्षिप्त सर्व मत में नित सो कहावै ।
वाकी भई कुमति, वा तिन बुद्धि वक्र ।
जानी न जाइ कछु रे कलि-काल-चक्र । १२

जो शीतला रुज-विदारणि शील-ऐनी ।
कृष्ण-प्रिया जगत-मा कृषि-शक्ति-दैनी ।
ता धेनु-प्राण हित एक छदाम नाहीं ।
चाहैं लुटै स्वधन नित्य कुमार्ग माही ॥१३

जो कोउ सज्जन कहूँ त्रुटि को सुधारैं ।
तो फेरि औ नरनि की लखिये वहारैं ।
कोरी प्रलाप वकवादि वहाइ धारैं ।
आलोचना करत द्वेष निकारि डारैं ॥१४

विप्रावतंस वटु-वृन्द कहूँ पढ़ैं ना।
रक्षा जु क्षत्रि-कुल हू तिनकी करै ना।
निःशास्त्र शस्त्र बल आज अतीव दीन।
जैसे मणी बिन फणी, जल-हीन मीन ॥१५

मौजे उड़े खलनि की, करि मित्र भेद।
मारे फिरैं सुजन, नित्य उठाइ खेद।
उत्साह बर्द्धि तिनके चित ना सम्हारौं।
तौलौं बताउ जिय मे कस धीर धारौं ॥१६

सीता सती गुणवती सत शीलधामा।
दुर्गावती कुलवती युवती ललामा।
झाँसी-भुवाल-पतिनी अति वीर-वामा।
लेवै न हाय! तिनको कहुँ कोउ नामा ॥१७

"जोनार्क" शुद्ध गुन-गान सबै उचारैं।
पै हाय! यो कबहु ना हिय मे विचारैं।
कैसैं हमार गृह होवहि ऐस कन्या।
जासों लसै विमल भारतभूमि धन्या ॥१८

जानै कहा अपढ़ बालन को पढ़ावैं।
देशोपकार तिनके उर न दृढ़ावैं।
काटैं विमूढ़ मम उन्नति-मूल हाय।
दुर्दैव-राज! तुम सो न कछू बसाय ॥१९

चाहैं परै अपन पै विपता अपार।
चूंकार ना करत, शासक के अगार।
काँपै विपन्न अति, सूझत ना उपाऊ।
सम्पूर्ण मानत भयङ्कर ताहि हाऊ ॥२०

सन्मान्य कारुणिक शासन मंजु पाइ।
हा हा सकैं रुदन आरत ना सुनाइ।
सन्तान ऐस अति दुर्बल-चित्त जाकी।
लीजै बिचारि कुदशा निज हीय ताकी ॥२१

मीठी बनी, चसकदार, बड़ी रसीली।
स्वादिष्ट, ना तनक हू करुई कसीली।
सों खांड त्यागि, नित खांड बनी विदेशी।
लीलैं, स्वधर्महिं तिलाञ्जलि दै विशेषी ॥२२

चाहैं नसैं, पलक मे धन को बहाय।
धारैं प्रदेश कर वस्तुनि पूर्ण चाय।
डारैं स्वदेशज पदार्थ परै, हटाय।
का पाप पाइ पलटी मति हाय हाय ॥२३

व्यापार जो सत सहायक प्राण प्यारो।
जाको रह्यो परम मोहि सदा सहारो।
ता की कथा अकथ आज कही न जाती।
हा हा अभाग, मम फाटत जो न छाती ॥२४

गावैं निपोलियन वीर गुणानुवाद।
पै ना करैं स्वकुदशा पर हा विषाद।
सिव राज नाम कहुँ पूरब पुण्य पाई।
देखौ अरे निकरि कें मुख सों न जाई ॥२५

देशाभिमानहि समोद पयोधि बोरी।
फेरयो समेटि चित सेवन-वृत्ति ओरी।
खोयो स्वजीवन बिना कछु नाम काम।
स्वातन्त्र-प्रेम तजि हाय भये गुलाम ॥२६

ना कोउ व्याप्त सब ठौर स्वदेश-भाषा ।
यो सोचि होत जिय मे अति ही निराशा।
मो नाम-राशिनि प्रकाशिनि शुद्ध भावै ।
हिन्दी प्रचारि अब ये त्रुटि को मिटावै ।।२७

कार्थेज रोम शुचि ग्रीसऽरु मिश्र देश ।
जापान शुभ्र-गुण जापत जो विशेष ।
"कैसे भये अवनि पे सब सो महान्" ।
ना देहि सो तनक हू इत ओर ध्यान ।।२८

एलेल० बी० निपुण प्लीडर विज्ञ बी० ए० ।
एमे प्रसिद्ध धनवन्त समोद हीए ।
कांग्रेस जात प्रति वर्ष छटा प्रकासी ।
पै ना कछू सुनत निर्धन ग्रामवासी ।।२९

का वे नही बसत भारतवर्ष माहि ?
किम्बा कछू सुनन को तिन सत्व नाहिं ?
छाये जहाँ अस अपार कठोर नेम ।
कैसे बढ़े कहहु तत्र स्वदेश-प्रेम ? ।।३०

शङ्कर, कुमारिल, जु आदि स्वधर्मधार ।
कीन्हो स्वदेशहित-पालन को प्रचार ।
कर्त्तव्य, धर्म, श्रुति ज्ञान बिना गमार ।
सन्यासि-भीर अब हाय समाज-भार ।।३१

पाण्डित्य-पूर्ण सुधुरन्धर ज्ञानवान ।
सत्-शीलवान जिन राखत सर्व मान ।
ऐसे अनेक जन काल-कराल-ग्रास ।
हा ! हा ! भये, कस न होहु कहो हतास ।।३२

जो तीर्थ जाइ तहँ पै बसिवौ विचारौं।
जीर्णातिजीर्ण मठ बैठि, तहाँ निहारौं।
ताकौं "गिरै न कहुँ ऊपर" सोचि त्यागौं।
लै शीघ्र प्राण अपने भयभीत भागौं ॥३३

कैसी करूँ, कह करूँ कित ओर जाऊँ।
सूझै न ठौर, जित आश्रय नैक पाऊँ।
लम्बी बड़ी अति, बिथा कबलौं सुनाऊँ।
जासों स्वचित्त हरि-चिन्तन मे लगाऊँ ॥३४

माधुर्य्य-माल मनमोहन शक्ति जाल।
भक्तार्त्ति-भीर-भय-भञ्जन सर्व काल।
पद्मापती प्रणत-पालक प्रेम-पुञ्ज।
आनन्द कन्द करुणा-कर कान्ति-कुञ्ज ॥३५

ससार सुन्दरपनो सबरौ सकेलि।
जाकी रची मधुर मूरति प्रेम-बेलि।
निश्चिन्त्य, तास तुम देखत जात प्रान।
शोकार्त्त कौन कहु भारत के समान ॥ ३६

जाकी चढ़ी विभव-गौरव दिव्य-गाथ।
आश्चर्य-युक्त जग सोचत नाइ माथ।
ताकी गिरी दुख भरी कुदशा निहारी।
जागी दया न तव जीय कहा विचारी ॥३७

लागै न तोहि दुख टारत नैक देरी।
प्रह्लाद औ गज पुरान कथा घनेरी।
पै हाय आज तव आलस छोर नाहीं।
प्यारी स्वजन्म शुचि-भारत-भूमि माहीं ॥३८

साँचो मदीय दुख, हीय निजै प्रमानी।
दारिद्र-सिन्धु मधि डूबत मोहि जानी।
आवौ हरी, यहि घरी सुधि धाइ लीजै।
पाषाण जीय तव क्यों न प्रभो! पसीजै? ॥३६

मेरे सुधार अनुरक्त जितेक भक्त।
सत्पुत्र और शुभचिन्तक बीच जक्त।
तिनको सदा सबल निर्भय नाथ कीजै।
शोकाऽब्धि सो मम उधारन शक्ति दीजै ॥४०

— नवम्बर १६०७

३

भारत-माता

लीजिये सुधि मेरी।
कहाँ कृष्ण करुणानिधि केशव गाय सिंह ने घेरी॥
सब प्रकार असहाय, हाय मै, जग कहाय तव चेरी।
चढ़ी सभ्यता शिखिर कहाँ की कहाँ नाथ यो गेरी॥
आर्य्य रत्नगर्भा यह निष्प्रभ दारिद दीन घनेरी।
"स्वर्गादपि गरीयसी" अब पददलित भस्म की ढेरी॥
रसना नाम करति निज साँचौ, ज्यों-ज्यों आरत टेरी।
जब-जब भार परयो प्रभु तब, सब विधि भू-विपति निवेरी॥
सो निज बानि कहाँ बिसराई, किह कारन यह देरी।
बिगरे काज गाइ है को सत कीरति कीरति तेरी॥

४

हिन्द-वन्दना

जय जय अनादि अनमधि अनन्त,
जय जय जग-वन विकसत बसन्त।
जय जय अच्युत अनवधि अधार,
जय जय जग-नाटक-सूत्रधार॥
जय जय सुन्दर सुखमा-रसाल,
जय जय शरणागत प्रणतपाल।
जय जय धुरीण धृति धर्म्म-ऐन,
जय जय जगदीनहि दान दैन॥
जय जय जग-नन्दन पारिजात,
जय जय दश दिश वन्दन प्रभात।
जय जय थल श्यामा-श्याम-केलि,
जय जय सुखधामा प्रेम-वेलि॥
जय जय जग प्रचुर पुनीतकाय,
जय जय अमान नित मान पाय।
जय जय विनोद सुरसरी श्रोत,
जय जय श्रीधर विद्युत उदोत॥
जय जय अथाह सत्यानुराग,
जय जय प्रवाह पूरण प्रयाग।
जय जय चञ्चल मन नहि घरीक,
जय जय प्रभु चरणन चञ्चरीक॥

जय जय अकाम नित न्याय-धाम,
जय जय जग कर शोभाभिराम।
जय जय दयार्द्र प्रेमाश्रु पूर।
जय जय क्रूरन सँग नित अक्रूर॥
जय जय प्रधान सब गुणनिधान,
जय जय प्रवीण मंगलविधान।
जय जय पतिव्रता पुण्य-पाँति।
जय जय अकलङ्क समस्त भाँति॥
जय जय परिपूरण ब्रह्मनिष्ट।
जय जय भवरुज चूरण बलिष्ट॥
जय जय अभीष्ट आनन्दकन्द।
जय जय उल्लास अमन्द चन्द॥
जय जय मंजुल जग-हृदय-माल।
जय जय जगमग जग ज्योति जाल॥
जय जय मनमोहन सौम्यरूप।
जय जय कछु कोह न, विश्वभूप।
जय जय जग उज्जल नवल रत्न।
जय जय उदार साधन प्रयत्न॥
जय जय निश्चल निष्कपट नेम।
जय जय दम्पति अति शुद्ध प्रेम॥
जय जय सुन्दर सद्धर्म सार।
जय जय जग सतगुर सब प्रकार॥
जय जय अव्यक्त अविचल सुधार।
जय जय वसुधा मधि सुधाधार॥

जय जय सुखमय सानन्द सद्म।
जय जय प्रमोद-प्रस्फुटित पद्म ॥
जय जय ललाट हिम-शैल-शृङ्ग।
जय जय मधुलोलुपमुकट भृङ्ग।
जय जय चिन्तामणि . चन्द्रकान्ति।
जय जय प्रशस्त पावन प्रशान्ति ॥
जय जय कलकंठनिनादगान।
जय जय द्विज-गो-पालक-महान ॥
जय जय सुकलाधर धरा-इन्दु।
जय जय पद-पद पीयूषबिन्दु ॥
जय जय कलकान्ति कला कलोल।
जय जय अमोल अति ललित लोल ॥
जय जय अद्भुत आभा अखण्ड।
जय जय मरकतमणि मार्त्तण्ड ॥
जय जय वसुन्धरा-छवि अक्षुद्र।
जय जय जग-वांछा-सरि-समुद्र ॥
जय जय महर्षि-यशनिचय-थम्ब।
जय जय समस्त जगतावलम्ब ॥
जय जय प्रताप प्रगटत प्रदीप।
जय जय महि मण्डलमख-महीप ॥
जय जय अभिमत-प्रद कामधेनु।
जय जय जग-मृग-मन-हरन वेनु ॥
जय जय करुना कमनीय कुञ्ज,
जय जय प्रिय पावन प्रनयपुञ्ज।

जय जय रसिया हिय सरल शान्त,
जय जय जग-रुचि-कामिनी-कान्त ॥
जय जय राखत निज वचन टेक,
जय जय त्यागत नहि धर्म्म एक
जय जय हिय कोमल बल अमेय,
जय जय निर्भय भीषण अजेय ॥
जय जय निशंक निर्द्वन्द वीर,
जय जय ध्रुवसम ध्रुव अचल धीर ।
जय जय रिपुरण नहि पीठ दैन,
जय जय धनेश मद लेश, पै, न ॥
जय जय पराक्रमी मनहु जिष्णु,
जय जय साधारण मन सहिष्णु ।
जय जय गुणगण गौरव असीम,
जय जय कराल संग्राम भीम ॥
जय जय जय-कङ्कन कर विशाल ।
जय जय प्रगल्भ रणशत्रुसाल ।
जय जय प्रण पूरण भरतखण्ड,
जय जय अरि दल नाशन प्रचण्ड ॥
जय जय खल गञ्जन विदित जक्त,
जय जय मनरजन राजभक्त ।
जय जय त्रिभुवन विख्यात देश,
जय जय अपूर्व अतुलित अशेष ॥
जय जय नित निरमल नर-निकुंज,
जय जय पपिया "पिय पिया" गुंज ।

जय जय आरज-कुल-कीर्त्ति केतु,
जय जय अनगढ दृढ़ वेद-सेतु ॥
जय जय जग जीवन जन अनन्य,
जय जय धीरज-धन धन्य-धन्य।
जय जय अनभव अमलारविन्द।
जय जय सदैव सतदेव हिन्द ॥

५

अब उद्धार कैसे हो ?

लगी दिन रैन है चिन्ता, कि अब उद्धार कैसे हो ?
पडी मझधार में भगवन्! ये नैया पार कैसे हो ?
चले आँधी निराशा की न सूझे अपना बेगाना।
खिवैया चौकडी भूले प्रभो! निस्तार कैसे हो ॥
नदी जीवन समर की है विजय उद्देश जिसका तट।
पहुँच उस तक, अविद्या का ये हलका भार कैसे हो ॥
भयानक भ्रम भँवर मे पड, गई सब मान मर्यादा।
हुए मदमत्त स्वारथ मे सुमति सञ्चार कैसे हो ॥
सभी कर्तव्य बिसराये न निश्चय आत्मशक्ती पर।
भला फिर सत विचारों का अभय उद्गार कैसे हो ॥

चेतावनी

चेतावनी

१

करहु मन मातृ-भूमि अनुराग।
जगत जगत बस तुम ही सोवत, नैन खोलि अब जाग।
करनौ काज करन सो सीखौ, कोरी गिटपिट त्याग।
जो परदेश-वस्तु छिन-भंगुर, तिन पर डारहु आग।
निज कर रची वस्तु सेवहु नित, तजि मत्सर मद राग।
चलहि अधिक दिन जो करि देखहु, कमती लागहि लाग।
हो स्वदेश-भ्रातन को पालन, जासौं का बड भाग।
मतवारे मधुकर बनि चाखहु, नागर मधुर पराग।
श्रद्धा-सज्जी लै निज उरसों, धोय द्वेष के दाग।
भ्रातृ-प्रेम की लै पिचकारी, चहुँदिस प्रमुदित भाग।
घोरि एकता—रंग परस्पर खेलहु, हिलमिल फाग।
'सत्य' ढोल-ढप लैकैं रागहु, निज उन्नति को राग।

—फर्वरी १९०६

२

सुनहु सुनहु मन लगाय। कहत दोउ भुज उठाय।
देखहु जनि भूलि जाय। भारत जन सारे॥
निरभय धरि उर उमंग। मिलहु एक हृदय संग।
रँगहु सकल प्रेम रंग। है कै मत-वारे॥

तोरहु निज बैर जाल । चलहु प्रथम-जनन चाल।
व्यर्थ होहु क्यों बिहाल । आरज - कुल - बारे ॥
सबरो आलस निवार । त्यागहु इन्द्रिय-बिहार।
देश को करहु उधार । बनत अब सँवारे॥
नागरी पढ़ौ सप्रीति । पालहु निज-धर्म नीति।
सकल चलहु स्वकुल रीति । रहहु न मन मारे॥
देश को दृढ़हु व्यापार । सम्पदा यही अधार।
जासों आनँद अपार । अवसि होहि भारे॥
ज्ञान शिल्प को बढ़ाय । रचहु ताहि मन दृढ़ाय।
साहस जनि तजहु भाय । रहहु धीर धारे॥
जो स्वदेश के पदार्थ । मोल लेहु सो यथार्थ।
धरहु स्वप्रण मनहु पार्थ । होहु जनि दुखारे॥
वृद्ध संस्कृत सुहाय । सेवहु नित चित्त लाय।
जासों संशय नसाय । बसहि सब सुखारे॥
जगहु जगहु देश भ्रात । लखहु दिवस चढ़त जात।
उमयो कब को प्रभात । नयन ना उघारे॥
निरमल उर करि उदार । कलह फूट निज बिसार।
भ्रातृ-प्रेम करि प्रचार । लूटहु जस भारे॥
जरमन इंगलैण्ड देश । फ्रान्स अमेरिका विशेष।
देश पश्चिमी अदेश । देत यह पियारे॥
होवहु जनि प्रिय अधीर । धारहु हिय मांहि धीर।
हरि है सब पीर-भीर । मोर मुकुट वारे॥
भारत तव भक्त नाथ । बिलपत मानहुँ अनाथ।
सत्यदेव ! करि सनाथ । द्रवहु अब मुरारे॥

३

क्या करि कृपा, प्रेम पूरित हो,
विनय हमारी पढ़ियेगा ?
वीर धीर बन साहस कर,
क्या उन्नति गिरि पै चढ़ियेगा ?
जगता है सब जगत जातियाँ—
उठ उठ देखौ खड़ी हुईं।
भ्रातृ सनेह परम पुरुषारथ,
स्वावलम्ब से जड़ी हुईं॥
कलह, कुरीति, द्वेष, उन्नति-रिपु,
तिन के सन्मुख अड़ी हुईं।
जीति दीनता को निर्भै हो,
यश फैला कर बड़ी हुईं॥
पड़े रहोगे योंही, या जगि,
झपट अगाड़ी बढ़ियेगा।
क्या .... ?

कैसा था वर बिभव तुम्हारा
जय प्रताप से बना हुआ।
विमल बीर रस से मतवाला,
विपुल जोम से तना हुआ॥
किन्तु न्यायनिष्ठा और करुणा
कोमलता से सना हुआ।

कभी न उलटा बचन सर्वदा
अपने प्रण से भना हुआ ॥
कहो, करोगे ऐसा, या बस
कोरी बातें गढ़िये़गा ?
क्या...... ......२

आँख उठा कर देखो तो टुक,
कुछ का कुछ अब रंग हुआ।
पुरुषारथ और ब्रह्मचर्य्य
खोने से यह क्या ढग हुआ ॥
मान और मर्यादा-व्रत सब
झूठ बोल कर भंग हुआ।
चालीस सेरे बने आलसी
अच्छा सग कुसग हुआ ॥
पड़े रहोगे यो ही या कुछ
यत्न अगाड़ी करियेगा।
क्या · · · ३

सब दानों से उत्तम विद्या-दान
मुनी बतलाते थे।
गुरुकुल ऋषिकुल खोल
आप छात्रो को मुदित पढ़ाते थे ॥
घर घर से चंदा लेकर,
नहि ऐश आराम उडाते थे।

हो स्वदेश का भला
चिन्तवन यही सदा मन में चहिये ॥
उठो फ़ाके में क्या अब भी
चुपकी साधि अकड़ियेगा।

क्या ६

४

उठो उठो हा भारत सोइए ना।
सोइए ना मुख जोइए ना ॥
बीत गई जो ताहि बिसारो।
व्यर्थ समै निज खोइए ना ॥
देखहु उठि परदेशनि-उन्नति।
आलस बीजनि बोइए ना ॥
कटि कसि करो देश-उद्धारहि।
मौज-मनोजन भोइए ना ॥
पश्चिमीय विद्या-जुगनू की।
देखि प्रभा प्रिय मोहिए ना ॥
लखि निज ओर चेत करि चित मे।
साहस हीन जु होइए ना ॥
नैन खोलि चलि आए पियारे।
बाट रसातल टोहिए ना ॥

घाती घात लगे चहुँ ओरन।
भूठ और साँच समोइए ना॥
सत्यनरायण बोझिल कामरि।
जाको और भिजोइए ना॥

५

मन मूरख क्यो नहिं मानै॥
अन्ध जगत के धन्ध फँस्यो तू रागत अपनी तानैं।
जग असार है मृग-तृष्णावत जाको क्यों नहिं जानै॥
कुल की कानि लगै अति प्यारी धरि उपदेश न कानै।
ज्ञान को सोटा हिय की कुंडी प्रेम भंग क्यो न छानै॥
भूलत भ्रमत न जानत तू कछु बिरथा निज हठ ठानै।
माया बस ह्वै फिरै दिवानौ कछु को कछू बखानै॥
साँची बात कहत जो कोऊ लरत अधिक रिस सानैं।
सत्यनारायण "मैं तू" तजिकर करु गोविन्द गुन गानै॥

६

पियारी तेरे गौने के दिन रहे चार।
प्रणव शब्द की वेंदि भाल पर, ज्ञान सुअंजन डार।
भौंह धनुष चख बाण चढ़ा कर, काम क्रोध मद मार॥
निर्भयता सिन्दूर माँग, कच भक्ति फुलेल सँवार।
अकपट आँगी भटपट पहनो, त्यागो सब जंजार॥

अगम निगम आदिक गढ़ि किंकिनि, जो सब विधि सुखकार।
कपट पटन को खोलि सखी री सत्य घाघरो धार॥
ओढ़ो सुभग सील की चादर बाँधि सनेह इजार।
श्याम-नाम पाजेब अँगिया पहनु, उठै झनकार॥
गुंथिया जगत-पंथ को तजिकैं डारि प्रेममय हार।
सत्यनारायण मिलो पिया हरि तेऊ भुजा पसार॥

समस्या-पूर्ति

समस्या-पूर्ति

१

सुख कारक, दारक दारिद के,
औ निवारक जो भव फन्दन के
छल-छारक जारक जालन के.
पुनि टारक जो दुख द्वन्दन के ॥
भय हारक कारक काज सबै.
सुप्रसारक प्रेम के बन्धन के ।
रहु रे मन तू पद-पङ्कज में,
वृषभान-सुता नँद-नन्दन के ॥

२

माखन चुरायो दधि लूटि लूटि खायो अब,
द्वै दिन सों कान्ह बाँधे लागे निज टपका।
आजहुँ न भरयो पेट उनको बताओ ऊधो,
कूबरी को राखि चाहैं दूसरी कों लपको ।
मधुपुरी जाय नित मौज हू उडावें आप,
देत सिख गोपिन "करौ री तुम जप को" ।
जनम सो जानत, दुरयो न कछु सत्यदेव.
नौ सै मूसे खाय के बिलाई बैठी तप कों ॥

६-७-५

३

बूड़त राखि लयो गज को,
हनि ग्राह, सनेह के साज सँजोये।
नाम "हरी" के पुकारत ही,
तुम जाय सबै दुख कटक खोये ॥
दीन-दशा लखि के भरि आवत,
आँसुन सों नित नैनन कोये।
भारत आरत आपको हाय!
कहाँ इतने करुणानिधि सोये ॥१॥

विश्व शिरोमणि भारत जो,
वह दीन मलीन अरु हीन भयौ ये।
प्लेग अकाल दुकाल को कष्ट
न जात दयानिधि हाय सह्यो ये ॥
सभ्य समाज चल्यो अगुआ बनि
सो ही पिछार निहार रह्यो ये।
मीचि के आँखि प्रलै-सुख-नींद
कहाँ करुणानिधि डाटि कै सोये ॥२॥

कोमल जो नव फूल खिले
हिय बेधि बिधे! दुख-तार पिरोये।
देश-दरिद्र दुखी फिर हू
तुम ताहू पै कौन नसा महि भोये ॥

विप्र सुदामा कों हेरि, इतो,
अपनो जन जानि दयानिधि रोये।
भारत गारत हेरि, कितै
करुणा तजि कैं करुणानिधि सोये ॥३॥

नामहि लेत धुरू प्रह्लादऽरु
द्रोपदी के दुख धाय कें धोये।
वेद पुराण पुकारत, तारत,
टारत भक्त-त्रितापनि जो ये ॥
टेरत आरत गारत भारत
"माधव माधव" अश्रु बिगोये।
नाम धराय लयो करुणानिधि
भाजि कहाँ करुणानिधि सोये ॥४॥

लीजिये चीर हृदै यहि को
लखि लीजिये वीज सनेह के बोये।
जाउ चढ़े कोउ काऊसी बातन,
नेह के पथ अगार रह्यो ये ॥
प्रेम के फंद फँस्यो तव नाथ
सिरै सबरे जग संकट ढोये।
भूलिकें भारत के हिय-सूल
कहाँ करुणा-वरुणालय सोये ॥५॥

टेरत टेरत हाय ! हरे !
रस ना रसना मधि आज रह्यो ये।
कातर कण्ठ बनै न गुहारत
कष्ट कठोर न जात कह्यो ये ॥

जा ही सों हे शरणागत-वत्सल
भारत आसरो आप लयो ये।
तानि पितम्बर पॉयन लों
भरि नींद कहाँ करुणानिधि सोये ॥६॥

काहू की बेर नृसिंह वराह
अरु वामन रूप हँसे मधुरोये।
काहू की बेर को राम हरी
घनश्याम जू लै अवतार सँजोये ॥
काहू की बेर उघारेहि पॉयन
आतुर भाजि, सबै दुख खोये।
भारत बेर अबेर करी तुम,
हाय, कहाँ ! करुणानिधि सोये ॥७॥

रैन दिना कल नाहिं परै
अजहूँ तुम केशव नींद में भोये।
दुःख के जालहि लेहु समेट,
जो भारत मे चहुँ ओर बिछो ये ॥
जोरि निहोर कहैं सतदेव
दया करि नाथ जू ! टेर सुनो ये।
काहे के हो करुणानिधि जू,
जब कानन दै अँगुरी तुम सोये ॥८॥

—जून १९०४

४

सह ग्वालन के मिलि के जुलि के,
अति खाय मजूम जो भूम छई।
लखि आवति कीरतिजा मग में,
शुभ मूँठि गुलाल की हाथ लई॥
पुनि घाल दई तिनके मुख पै,
सतदेव कसैं कटि प्रेम मई।
कहि होरी है, होरी है, होरी है जू,
पिचकारी पियारी पै छॉड़ि दई॥

५

रीति की बात न प्रीति की बात,
प्रतीत की बात न बातन पाई।
ज्ञान सुहाय न चाय न चित्त में,
ना दुख पाय सहैं कठिनाई॥
पीय ही पीय पुकारत है हिय,
पापी सँतापी रह्यो नहि जाई।
सत्य जू, हा, हरि के बिछुरें,
छतियाँ फटिगी पै दरार न आई॥

६

दासी सबै जु हरी-पद-कंज की,
ज्ञान को गान लगै तव फीकौ।
ऊधो क्यों याहि हमैं समझाय कैं,
लेहु सिरै निज लीलि को टीकौ॥

रैन दिना कल ना सतदेव जू,
भेजो न श्याम जरावन जी कौ ।
धीरज देवौ रह्यो इक ओर,
वियोग मे योग करावत नीकौ ।।

७

कोऊ करो बदनाम जू मोहि,
भयो मन ये घनश्याम को चेरो ।
सत्य निहारि हँस्यो जब सो,
तब सो ही कछू मो पै मंतरु फेरो ।।
टोह मे लाग्यो रहे निसि बासर,
पाग्यो सदां तिह जोह घनेरो ।
प्रेम को साज सजाय लियो,
तब लाज सो काज कहा अब मेरो ।।

८

चित्त फँस्यो मन-मोहन में,
चाहे कोऊ कछू हिरदै में धरयो करौ ।
सत्य जू गाँव के सोर हँसौ,
चहुँघा चलि क्यों न चवाउ करयो करौ ।।
भार मे जाउ मरी कुल कानि,
अरोस परोस के लोग लरयो करौ ।
प्रेम कौ ताज धरयो सिर पै
भलैं लाज निगोरी पै गाज परयो करौ ।।

९

कैसे करों, मग चालत मे,
ये निपूतो कुनूपुर आंगुरी चांपै।
सत्य जू आगें धरों परै पीछे,
जु हाय परी कहा वीजुरी पांपै॥
ब्यारि उड्यो यह अंचल वावरौ,
चंचल चौंकि दृगंचल ढांपै।
गे हरी गेह री वीर धसौं किमि
देहरी चाढ़त देह री कांपै॥

१०

रानी सबै तुम लोकन की,
करु वेग कृपा जगदम्ब भवानी।
चानी ते कारज सर्व करथो,
धरथो रूप यहाँ जन के हित आनी॥
आनि मेरे त्रैताप हरौ,
सतदेव सबै सुख सम्पति सानी॥
सानी स्वरूप सदां रस की,
बुधि शुद्ध करौ दुरगे महारानी॥

११

जायँ कहाँ तोहि ढूढ़ें प्रिये,
अब धीरज हू हम वॉह विसारी।
रैनि दिना कल नाहिं परै,
सतदेव जू नैनन सों वहै वारी॥

घोर-घमंड-घने-घन की सुनि,
सोच यही नित हीय मझारी।
पुण्य पुरातन प्रेम की प्रेरणा,
हाय! कितै गई प्राण पियारी?

१२

निज स्वारथ को बस ध्यान जिन्हैं,
परमारथ ओर न दृष्टि भई।
निज कोरे महागुन गायो करैं,
चलैं बेढंग चाल बिरोध-मई॥
यदि कोऊ कहै हित की न सुनैं,
नहिं जानत जागृति-जोति-नई।
मिल जो नहिं सत्य प्रयत्न करैं,
उन लोगनि जाति बिगारि दई॥

पद

पद

१

जगत में को ऐसो गुनवान—
लटि लटि देह झाँझरी सी ह्वै, लखी परै पियरान।
केकी केका कोयल कूक की हूक उठै हियरान॥
निमिष २ मोहि विष सम लागत कल न परत जियरान।
सुधि तो छीन लई मति काऊ, बुद्धि लगी सियरान॥
सतनारायण नन्द नँदन कहँ लाय करै नियरान।

२

हे घन श्याम कहाँ घनश्याम।
रज मँडराति चरण-रज कित सों शीश धरैं अठ जाम॥
स्वेत पटल लै घन, कहँ त्यागी सुरभी सुखद ललाम।
मोरनि-घोर सोर चहुँ सुनियत, मोर मुकट किह ठाम॥
गरजत पुनि पुनि, कहाँ बतावौ मुरली मृदु सुर-धाम।
तड़पावत हौ तडितहिं छिन छिन, पीताम्बर नहिं नाम॥
बरसा वारि, नेह चितवनि कित जो दायिनि बिसराम।
सत्य आज प्रियतमहिं मिलावौ जिय भरि पकरहुँ पाम॥

३

सँवलिया परत न तो बिन चैन ।
नैन लगे जा छिन से तोसों तब सों लगत न नैन ॥
मधुर बैन सुनि तव मनमोहन नैंक सुहात न बैन ।
तव प्रभु कुटिल सैन के सन्मुख कर का सक दुख सैन ॥
साथिन भैन हँसति दे तारो पै मोहि तिनकी भै न ।
सतनारायण क्यों तरसावत आइ मिलौ सुख दैन ॥

४

आइये सुजन पियारे ।
करथो यथार्थ-स्वयश चरितारथ, जो यहँ सदय पधारे ॥
उच्च-उदार-भाव-मन्दिर यह श्रुति-पंचामृत पीजे ।
भेद-भाव तजि एक प्राण सों मातृ-वन्दना कीजै ॥
या कारन पूर्वज ऋषियनु की कीर्त्तिलता लहराई ।
सुमन सुमन विकसित चहुँ निकसत सौरभ सब जग छाई ॥
तिन सुन्दर गौरव रच्छा कों, का यह समुचित नाहीं ।
रहै चिरस्थित यह विद्यालय अनुपम भारत माहीं ॥
यह जीवन संग्राम जानिये, जो प्रयत्न दरसावै ।
करै प्रमाणित बली भली विधि या महिं सो जय पावै ॥
या सों तन मन धन हू अरपन करि, विद्योन्नति कीजे ।
जग दुरलभ नर जीवन को फल सत्य सुखद अब लीजे ॥

५

करि मन टका राम को ध्यान ।
जगत बीच इक कर्म्म टका है टका ही राखे मान ॥
टका धर्म्म सब प्राणि मात्र को जीवन टका बखान ।
टका बिना टकटकी लगाये कछु न परत पहचान ॥
टका मसालो भग मँगावै राजी हो चित छान ।
टका रहित राजा चकरावैं प्रजा करहिं दुख गान ॥
रोग शत्रु अरु क्षुधा विपति को टका जु मित्र समान ।
टका ते गर्व टका ही ते आदर टका ते निर्भय प्रान ॥
बिना टका सब कोरी खट खट व्यर्थ सु जीवन जान ।
टका हितैषी हित यह पद किय सत्यदेव निर्वान ॥

६

जगत में का साँचो श्रीमान् ?
सिंह घिरी गैया डकरावै, आन रखावै प्रान ।
खैंचत चीर दुसासन पापी छाँडि के सभ्य कलान ॥
शशि कुल गौरव धराधाम पैं सदाँ रह्यो बिमलान ।
हाय कलङ्कित ह्वैगो देखें दुःख निबल अबलान ॥
पारथ को पुरुषारथ थाक्यो, धरम-सुवन गुण-खान ।
बैठे बैठे धरनि कुरदहिं देखत मनहुँ अप्रान ॥

दोहे

३

श्री राधामाधव विलास

श्री राधापति माधव, श्री सीता पति धीर।
मत्स आदि अवतार नित, नमौं, हरहु भवपीर॥ १
रेवति प्रिय मूसल हली, वली श्री वलराम।
बन्दौ जग व्यापक सकल, कृष्णाग्रज सुखधाम॥ २
भव-वाधागाधा हरन, राधा राधापीय।
दुख दारिद दरि, विस्तरहु, मंगल मेरे हीय॥ ३
श्री राधा वृषभानुजा, कृष्ण प्रिया हरि शक्ति।
देहु अचल निज पदन की, परम पावनी भक्ति॥ ४
मकराकृत कुंडल श्रवन, पीतवसन तन ईश।
सहित राधिका मो हृदय, बास करौ गोपीश॥ ५

क्यों पीवहिं मो चरण रस, मुनी पियूष विहाय।
यह जानन बालक हरी, चूसत स्वपद अघाय॥ ६
चन्द्र कमल को जगत मे, अनुचित बैर कहात
यासो हरि निजपद कमल, विधुमुख हेत लखात॥७
"करौं जगत पावन सकल", सोचि जनो मन एह।
यदपि निपट निर्गुण तदपि, धरत सगुण हरि देह॥८
यदपि समल यमलारजुन, लह्यो मुनी को श्राप।
परसि कृष्ण ऊखल बँध्यों, सुरगहिं गये सदाप॥९
'अरे कृष्ण दधि-मथनिया, क्यो डारत कर तात?"
"चैंटी जो जामे गिरीं, तिनहि निकारन, मात!"१०

पीत बसन घनश्याम तन, ऐसो शोभित होत।
मनहुँ सघन घन श्याम में, दामिन दमक उदोत ॥११
राधे प्रफुलित कंज सम, तव आनन रस ऐन
ता पराग लोभी भ्रमर, हरि गूंजत दिन रैन ॥१२
सोहत राधा-चन्द्र-मुख, किरण हँसी मृदु कोर।
लागत जनु घनश्याम के, सखि, थिर नयन चकोर ॥१३
धनि राधे तव मुख कमल, बिकसत परम सुहात।
जा मधु के लालच मधुप, हरि इत आवत जात ॥१४

मृगमद टीको दिपत शुभ, नीको राधा भाल।
जनु राजत शशिमधि सुभग, निरभय सूरज बाल ॥१५
लटकत रुचिर बुलाक सों, वदन प्रभा सरसाय।
मनहुँ मंजु निरमल लसत, बुध विधु मंडल जाय ॥१६
नील बसन मधि लसत अस, राधा मुख अभिराम।
मनहुँ घिरयो चहुँ शरद शशि, नूतन घन घन श्याम ॥१७
लसत वदन सुख सदन करि, इत उत कार बार।
तम बिदारि मानहु भयो, उदय शशी सुखकार ॥१८
दसन पाति भागीरथी, भानुसुता भ्रू कोर।
अधर सरसुनी सों मिल्यो, तीर्थराज मुख तोर ॥१९
नासा तर रस धर अधर, आभाधर सरसात।
बिंध्यो कनक के तार में, मनु मानिक दरसात ॥२०
मनहुँ सुधाकर शशि, करन छयी रोग को नास।
कल कपाल मिस देह द्वै, धारि करतु नित त्रास ॥२१

कंजन, खंजन, मिरग, भख, मदगजन छबि दैन।
लसन मैन मद ऐन से, राधे तेरे नैन ॥२२

कारे बार नितम्ब लो, लहरि छटा सरसात।
शशिमुख अधरामृत पियन, जनु पन्नग गन जात ॥२३

निज करसो बैनी गुहति, गति इत उत कच चीर।
मनु पंकज बैठी लसति, भ्रमरावलि की भीर ॥२४

कल कपोल सों लट लटकि, युगल कुचन पै भाति।
सटकारी नागिन मनौ, शशि तजि मेरुहिं जाति ॥२५

कचन बढ़ाय सनेह सो, बाँधति तिन दृढ़ तीय।
कठिन निरदई तनक तब नाहिं पसीजत हीय ॥२६

गुहे मालती सुमन सो, सोहत कारे बार।
मनहुँ सघन घनश्याम में, सेत बकन की धार ॥२७

पीत बसन तन, मुरलि कर, कहत मनोहर बात।
मन्द-मन्द पग धरत सो, को सखि ! श्यामल गात ॥२८

अरी मुरलिया तैं करयो, कौन कठिन तप बीर।
जो पीवति हरि-अधर-रस, नासत भव-भय-पीर ॥२९

बृन्दावन चल राधिका, बेग बेग धरि पाय।
गावत मुरलीधर सुखद, मुरली मधुर बजाय ॥३०

जमुनाकूल कदंब तर, ठाड़ो प्रेम प्रमत्त।
हरि बजाय मुरली मधुर, हरत गोपिकन चित्त ॥३१

बृच्छ बल्लरी कुंज में, बिबिधि बिहंगन संग।
बिहरत हरि बृन्दा बिपिन, उमगति उरहि उमंग ॥३२

चुंबन करि परपुरुष मुख, मुरलि तऊ नादान।
अपने कों वंशज कहति, महा मोद मन मान ॥३३

रे अशोक लखि सुमन क्यों, गर्व करै मन मांहि।
कहा तिया की लात कौ, तो कों सुमिरन नॉहि ॥३४

विलसति यद्यपि चहचही, चहुँ दिसि पादप माल।
तदपि सरस कोयल हृदय, भावत एक रसाल ॥३५

"मम मन सम नहिं काहु मन" यही हृदय में धारि।
दरसावत दाड़िम मनों अपनो हीय विदारि ॥३६

री कोयल जनि मौन गहु बोलहु बोल रसाल।
न तो जानि हैं तोहि सब, बैठ्यो काग रसाल ॥३७

क्यों करीर विरवन वसत, कीर छाँडि निज धीर।
विरमहु जाय रसाल जहँ, विहरत त्रिविध समीर ॥३८

कुसुमित वेलि नवेलि चहुँ, करत मधुप मृदु गान।
मञ्ज लताई मानिनी, छोड़त अपनो मान ॥३९

नूतन मृदु मधु वल्लरी, ऋतु-पति आगम पाय।
लाल नवल दल वसन सजि मनो वधू दरसाय ॥४०

कोकिल कल कूजन कलित, मनहु सुधारस सान।
विना पिया परि सखि! सकल, दुख दै जारत प्रान ॥४१

का सखि! तहँ फूले न वन, करत न कोकिल कूक।
नहिं आवत पिय हेतु का, होत हृदय में हूक ॥४२

तरुण तरणि तापित सरप छाया सुख कों पाय।
सोवत केकी पंख तर निज भय-मरन विहाय ॥४३

तजि निज बैर, मृगेन्द्र मृग, गज कपि शूकर भीर।
दावानल की ताप सों, आवत पीवन नीर ॥४४

जय जग जीवन जीवनहि, देहु तनक बरसाय।
कहा होय फिरि चेति के, जब चातक मर जाय ॥४५

कूप सरित सागर सलिल, यदपि जगत दरसात।
तबहु न चातक की तृषा, बिना जलदजल जात ॥४६

घन बरसत नाचत शिखी, फुरत लतनि दल सैन।
चातक का पातक कियो, तव मुख नीर परै न ॥४७

धिक नीरद! चातक तृषा, तो पै पूर न होहि।
धिक चातक परलापि जो, पुनि पुनि जाचत तोहि ॥४८

यदपि लह्यो बक! हंस को, सेत रूप तन माँहि।
छीर नीर न्यारो करन, तोऊ समरथ नाहि ॥४९

सोहत हरि गोपीन सँग, रास करत जा काल।
मानहुँ मोती माल मधि, नीलम लसत बिशाल ॥५०

मृगमद गरवहु जानि जनि, मोर सुगध सुहात।
तुम किरात के बान सो, मरवायो निज तात ॥५१

"प्यारो रवि नीचें गिरत, कबहूँ देखहुँ मैं न"।
मन मलीन यों कमलिनी. मींचत स्वकमल नैन ॥५२

नाथ बिरह सहिहौ सकल, देहु लुकञ्जन लाय।
जासों, तन को अतन के शर सो सकौ बचाय ॥५३

बाहिर भीतर क्रूर सब, करत करम नित क्रूर।
क्रूर तऊ दुख देन को, कहत याहि अक्रूर ॥५४

कहा करौं कहँ जांउ सखि, कैसे बिलपौं बीर।
बिरह अनल सों दग्ध हिय, कहौं काहि निज पीर ॥५५
पद हू मे काँटौ लग्यो, करत विकल दै पीर।
जा जन के हिरदय छिद्यौ, ताकौ कल कस बीर ॥५६
सुमरत सुमरत नाथ कों, कठिन शोक को सूल।
टूक टूक हीयो करै, अजहू सालत हूल ॥५७
गई रैनि आये न पिय, सखि! मम जीवनप्रान।
बिरह आगि सों चहक कें, प्रान करत प्रस्थान ॥५८
कहु रे कागा परम प्रिय, प्रिय आवन की बात।
तिन आये हौं देउँगी, तोहि दूध अरु भात ॥५९
माधव तेरे विरह में, तज्यौ सकल निज वेश।
नीर भरे ताके नयन, धूरि धूसरित केश ॥६०

रूपान्तर

चर्पट पंजरी

प्रतिविम्ब

भज गोविंदहि भज गोविंदहि,
गोविंदहि भजि मूढ़ अरे।
लहि समीपवरती निज मरना,
करै न रक्षा 'डुकृञ्' करना ॥ भज० ॥

भावार्थ

रे मूरख भजि राम कों, राम भजे गति होइ।
मौत आइ घेरै जभी, कौन बचावै तोइ ॥ १ ॥

बाल अवस्था में क्रीड़ागत,
है कै तरुण भयो तरुणी रत।
वृद्धपने में चिन्ताधीना,
पारब्रह्म सों कबहुँ न लीना ॥ भज० ॥
लरिकाई गई खेल मे, ज्वानी जोरू संग।
बूढ़ भयो सोचत रह्यो, रँग्यो न हरि के रंग ॥ २ ॥

पीन पयोधर जघन स्थाना,
लखि तिय माया मोह फँसाना।
यह सब माँसवसादि विकारा,
मनहि विचारहु बारहिं बारा ॥भज०॥

उभरी छाती देखिके, परसत जाँघ सुडौल ।
मोह जाल ऐसो फँस्यो, करत नारिसो चौल ।।
चरबी माँस बढ़ोतरी, दीसति अच्छी नारि ।
बेर बेर तू सोच कें, मन में नेंक विचार ।। ३ ।।

सिथिल अङ्ग सिर सेत घनेरो,
दशन विहीन भयो मुख तेरो ।
ह्वै अति वृद्ध फिरत गहि डंडहि,
तदपि न छाँड़त आशा पिंडहि ।।भज०।।

सूखि आँग मूड़ी हलत, मुंह मे एक न दाँत ।
बूढ़ भयो लाठी गही, तऊ न आशा जात ।। ४ ।।

जबलो धन-संचय बल देही,
तब लौं है परिवार सनेही ।
भयो जबै पुनि जरजर गाता,
कोउ न पूछत घर में बाता ।।भज०।।

हाथ पाइँ जौलौं चलें, जौलौं टका कमाइ ।
तौलौं आदर होत है, जब घर भीतर जाइ ।।
हाथ पाइँ जब थकि गये, कौड़ी नहीं कमाइ ।
बात न कोऊ पूछई, जब घर भीतर जाइ ।। ५ ।।

निशिदिन सन्ध्या प्रात जु धावैं,
शिशिर वसन्तहु पुनि पुनि आवैं।
नाचत काल जु बीतत आयू,
तदपि न छांड़ति आशा-वायू ॥भज०॥

राति दिना बीतत रहैं, अब संझा तब भोर।
जाड़े गरमी होत हैं, काल बड़ो है चोर॥
खेलत कूदत लेत है, सिगरी उमरि चुराइ।
तबहू तो मन ते नहीं, चाह नेंक हू जाइ॥ ६ ॥

वैस गये, का काम बिकारा?
जल सूखे सर की का सारा।
छीन भये धन का परिवारा?
समझे तत्त्वहि का संसारा?॥भज०॥

उमरि खसे रसियापनो, जल सूखे का ताल।
छांड़े कुटुम गरीव को, ज्ञानी जग जंजाल॥ ७ ॥

रखहि मुडाहि उपारहि केशा,
भगवां पट करि धरि बहु भेषा।
लखतहु पै न लखत संसारा,
करत उदर हित शोक अपारा ॥भज०॥

कोऊ जटा रखाइ कै, कोऊ मूँड़ मुड़ाइ।
कोऊ बार उखारि कें, भगवां भेख बनाइ॥

सूझत हू अंधो बन जग नहि देखै आप।
पेट काज रोवतु फिरै, बांह लगाए छाप ॥ ८ ॥

मग चिथरन सों निरमित कंथहि,
धरमाधरम न जानत पंथहि।
न मैं, न तू, अरु ना यह लोका,
तौ किहि काज समैटत शोका ॥भज०॥

घूरे लत्ता बीनि के, सियन कांथरी जोइ।
पाप पुन्न माने नही, जो चाहे सो होइ॥
मैं अरु तू कोउ अमर नहिं, अमर न दुनिया होइ।
तोऊ मरती बेर क्यों, देखि देत तू रोइ॥ ९ ॥

आगें अग्नि पिछारी भानू,
निशि मे करत चिबुक तर जानू।
कर भिक्षा, तरु नीचै बासा,
तदपि न छांड़त आशा-पाशा ॥भज०॥

आगे धरिके आगि को, सूरज को दै पीठ।
घोंटुन पै ठोड़ी धरै, राति कटति है नीठ॥
हाथ पसारे भीख को, करै पेड़ तर बास।
या गति को पहुँचै तऊ, नेक न छांडत आस॥१०॥

को मैं ? कहँ से ? कहँ को आता ?
को मम मातु ? कौन मम ताता ?
लखि जिय सकल असार-पसारा।
तजिकैं यह सब स्वप्न विचारा ॥भज०॥

को मै, अरु आयो कहाँ कितते गयो जु आइ।
बाबा मेरो कौन है, को है मेरी माइ॥
ये दुनिया जो दीखती, फीकी सब तू जान।
या सबकूँ तू छोडिदे सपने की सी मान॥११॥

को तव पतनी ? को तव पुत्रा ?
यह संसार अतीव विचित्रा॥
को का को ? तू को ? कित आई ?
चिन्तन करहु तत्त्व को भाई॥भज०॥

जोरू तेरी कौन है, बेटा तेरो कौन।
अचरज की दुनिया बनी, जाकू जानै कौन॥
को तू, है तू कौन को, कहाँ गयो तू आइ।
निहचै बात विचारियो मन में मेरे भाइ॥१२॥

फिर फिर मरना फिर फिर होना,
फिर फिर मात उदर में सोना।
यह जग अगम गहन भयकारी,
कृपया तारौ मोहि मुरारी॥भज०॥

फिर फिर जीवै फिर मरै, फिर मैया के पेट।
ये जग खोटो राम मोहि, लै बचाइ दुख मेट ॥१३॥

गावहु गीता सहस्र नामा,
ध्याउ सदा हरि-रूप ललामा।
सेवहु नित सतसंग सुहाता,
करहु दान दीनहि वित ताता ॥भज०॥

गीता गावहु प्रेम सो, हरिके नाम हजार।
संगत कीजै साधु की, सब छूटै जंजार॥
जितनो बनि तो पै परै, तितनो कीजो दान।
भूखौ आवै द्वार पै, कीजो कछु सनमान ॥१४॥

दिलीप कथा

बानी अर्थ समान युक्त जो जगके मा पितु जानी।
वाक्य अर्थ के बोध हेत, नित बन्दौ शम्भु भवानी ॥ १
कहां तुच्छ मति मोर, कहाँ दुस्तर रवि वश अपारा।
तरन चहौं, लै डौंगी, भ्रमवस पारावारहिं पारा ॥ २
अति मतिमन्द सुकवि-जस चाहो, होगी लोक हँसाई।
बौना की सी उच्च फलहिं जो उचकत बाह उठाई ॥ ३
किन्तु प्रथम ही जासु वश को खोल्यो कविजन द्वारो।
वज्र-बिंधी-मनि-सूत भांति मो जासों होय गुजारो ॥ ४
चेरी जिन की सिद्धि, जनम सों जो अति पावन भारी।
सिन्धु छोर लों भूप, चलत रथ जिनके स्वर्ग मँझारी ॥ ५
यथा विधी रचि यज्ञ किय, जिन याची सदा अयाची।
जस अपराध दण्ड तस दीन्हो, चोकस अवसर जाची ॥ ६
दान देन धन जोरि, सदा जो सत्य हेत मित भाखी।
जय सञ्चयी सुयस हित, जिन तिय वश चलावन राखी ॥ ७
बालापन पढि ब्रह्मचर्य्य सों, रमी रमणि तरुणाई।
वृद्ध समय मुनि भाति योग करि, तजी देह हरि ध्याई ॥ ८
सकत न यदपि बखान, तऊ रघुकुल को कहन विचारयो।
सुनि कानन तिन-कथा चुलबुले चञ्चल चितको मारयो ॥ ९
परखहिं वही सजन जाकों, जो सांच असांच प्रमानें।
जैसे आंच तपाय, कनक की सेत स्यामता मानै ॥ १०
चतुर सिरोमनि माननीय नृप बैवस्वत मनु नामा।
छन्दन में जिमि 'प्रणव' प्रथम, तिमि भयो भूप-अभिरामा ॥ ११

परम पवित्र तास कुल सुन्दर, अति पवित्र नृप-चन्दू।
उपज्यो नृप दिलीप नय नागर, जिमि छीरोदधि-इन्दू॥ १२
वृषभ कन्ध, बल बिपुल, हृदय भुज दीर्घ शील अनुहारा।
जिमि स्वधर्म पालन हित तत्पर क्षात्र-धर्म-अवतारा॥ १३
तेज और निज प्रबलपने सो करि सब को मद चूरी।
बढ़ि, सुमेर सो, बसुन्धरा जिन करी स्वबस भरपूरी॥ १४
देह समान बुद्धि बल जाको, बुधि समान श्रुति-ज्ञाना।
ज्ञान सरिस जा करम, करम सम जासु सिद्धि, जग जाना॥१५
डरत चहत ता कहँ आश्रित जन, लखि नृप नृप-गुन भारी।
जिमि नर झिझकत जात सिन्धु–दिसि ग्राह, सुरत्न सँवारी॥१६
धरि रथ-चाक-स्वभाव, चतुर नृप लहि, मनु मारग वारी।
नियम-लीक नहिं डिगी, लीकभर, ताकी प्रजा पियारी॥१७
सहस गुनौ रस दैन, भानु कर खैंचत, जिमि रस-सारी।
वा ने, तिमि, कर लयो, प्रजा सो, करिवे अधिक सुखारी॥१८
द्वैसो कारज सरै, सैन मरजादा रखिवे वाकी।
शास्त्रन मे दृढ़ बुद्धि, चाप पै चढ़ी प्रतिंचा जाकी॥ १९
खुलत न कछु, ता मुख बिकार लखि, राखत गुप्त बिचारा।
पूरव-सस्कार सम, जासु फलहि सब करम अपारा॥ २०
निर्भय तऊ करत निज रच्छा अरज्यो धरम अकामा।
लयो लोभ बिन धन अशक्त ह्वै, भोगे भोग ललामा॥ २१
जानत तउ चुप, छम्यो बीर बनि, देत डींग नहिं मारी।
ता गुन अगुन संग रहि, सोहत मनहुँ सहोदर भारी॥ २२
वेदन को लहि पार, विषय मे कबहु न मनहि लगायो।
बिना वृद्ध वय धरम निरत रत, भूपति बड़ो कहायो॥ २३

शिक्षा-रक्षण-भरण आदि सों प्रजा-पिता तिहि जानौ ।
केवल जनम प्रदाता तिनके निज-निज पितु को मानौ ॥ २४
प्रजा-शान्ति हित डांड्यो दोषिन, सुत हित कियो बिवाहा ।
अरथ काम हू चतुर भूप के मानहुँ धरम उछाहा ॥ २५
भूप रसा पै यज्ञ करत, बासव बरसावत वारी ।
अपु में पलटि सम्पदा निज निज करी भुवन रखवारी ॥ २६
पचि हारे नृप अपर, सके नहिं, प्रजापाल जस चोरी ।
'चोरी' लियो चुराय नाम निज, परधन सों मुख मोरी ॥ २७
रोगी औषधि सम तिहिं प्यारो, शत्रु सजन जो कोई ।
उरगन्डसी अँगुरी सम नृप प्रिय तज्यो जो दुरजन होई ॥ २८
बिधि ने सज्यो ताहि वाही सों, जासो तत्व बनाये ।
तासों तिन सम, सब गुन जाके, परहित हेत सुहाये ॥ २९
उदधि तीर प्राचीर जासु दृढ़, सागर सुन्दर खाई ।
करयौ पुरी को सौ छिति-शासन, इक छत नृप हुलसाई ॥ ३०
मगध-देस-नृप-सुता चतुर जो सब जग बीच कहाई ।
यज्ञ-दक्षिणा सम सुदक्षिणा ताकी रानि सुहाई ॥ ३१
बहु रानिन के अछत, भूप अपुकौ तियवन्त विचारी ।
लहि सुलक्षिणा, राजलक्ष्मी, सुदक्षिणा सी नारी ॥ ३२
निज अनुरूप प्रिया अपनी के आत्मजन्म ललचानौ ।
मिल्यो न किन्तु मनोरथ वाको, योंही समय बितानौ ॥ ३३
सुतहित जतन करन, निज भुज सों जग-भरु भार उतारयो ।
सब बिधि उचित बिचारि ताहि पुनि सचिवन ऊपर डारयो ॥ ३४
पुत्र-कामना सो मनाय बिधि, दोऊ अति रुचि मानी ।
गुरु बशिष्ठ-आश्रम अति पावन, चले नृपति अरु रानी ॥ ३५

सजि बैठे मिलि रथ, जाकी धुनि मधुर मञ्जु मतवारी।
मनु बरषा घन पै ऐरावत ऐरावती सवारी॥ ३६
शाल-गोद गसि गन्धि गुही, तन परसि परम सुखकारी।
बन कँपाय, पूरित पराग, तिन सेवत चलै वियारी॥ ३७
सुनि रथ-धुनि घन भ्रम वश कोहकत कलकलापि किलकारी।
सुनत चले, मृदु षड्ज तुल्य तिन केका द्विविधि नियारी॥ ३८
कछु पथसों हटि मिरग मिथुन, रथ इकटक दीठि निहारैं।
तिन दृग सों निज दृग मिलाइ हँसि दोऊ करत विहारैं॥ ३९
कहुं सारस की श्रेनि अधर मिलि वन्दनवार वनावैं।
सुनि तिन सरस गान, दोऊ कछु आनन नभहिं उठावैं॥ ४०
हौन पवन अनुकूल मनोरथ-सिद्धि प्रगट दरसावै।
हय खुर रज उड़ि, रानि अलक, नृप मुकुट छुअन नहिं पावै॥४१
सरवर-लहरि लहकि, मिलि पकज-परिमल-सीत समानी।
निज उसास सम सूंघत ताको, चले नृपत अरु रानी॥ ४२
होत चले तिन गामन ह्वैकैं जो मख हेत लगाये।
होतन के अमोघ आशिष, अरु अरघ-दान तहँ पाये॥ ४३
नव-नवनीत भेट कहुँ लाये बृद्ध गोप मनभाये।
पूछत नृप तिनसों बन-मारग-तट-तरु नाम सुहाये॥ ४४
बिमल वेस सों चलत अहा! तिन शोभा कहत न आवै।
मनहुँ चैत में चपल चारु मिलि चित्रा चन्द्र सुहावै॥ ४५
लग्यो दिखावन सकल, प्रिया कों, जो मग में मनमानी।
जाति रही, तउ गैल चतुर-चूरामनि जात न जानी॥ ४६
थके जास मग चलत अस्व, नृप अद्वितीय जस वारो।
पहुँच्यो रानी सहित सांझ को, जहँ मुनि आश्रम प्यारो॥ ४७

जहां समिध बन-फल कुस लैकें मुनि गन बनसों आवैं।
तिनकों स्वागत लैन अलख अति अनल देव नित जावैं ॥ ४८
जहां कुटी पै मिरग धान-तृन नित के चाखन हारे।
ठाड़े द्वार रोकि मानो सुत ऋषि-पतिनिन के प्यारे ॥ ४९
सींचत सभय जहां मुनि कन्या पौधनि घमलन माहीं।
जलभरि, प्यासे बिहँग तिनहिं बिसवास दैन ढुरि जाहीं ॥ ५०
राखे घाम सुखाय, धान के जहँ पै ढेर लगाई।
करत जुगार अजिर में बैठे निरभय तहँ मृग आई ॥ ५१
आहुति गन्धि-गुह्यो जहँ सूचक होम-अनल को जोई।
पवन-पुह्यौ चहु धूम, करै अतिथिन को पावन सोई ॥ ५२
"रथ-घोडनि को खोल देहु" यह कहि सारथि समझायो।
रथसौं प्रिया उतारि, आपहू उतरि भूप पुनि आयो ॥ ५३
पूजनीय नय-करम-धरम-रत जो दीनन रखवारो।
सभ्य मुनिन रानी सह ताको कीन्हो स्वागत भारो ॥ ५४
सन्ध्या-विधि बीतत, नृप देखे मुनि अरुन्धती सङ्गा।
मनहुँ विराजत अग्निदेव मिलि स्वाहा सहित उमङ्गा ॥ ५५
राजा सहित मागधी रानी तिन पद वन्दन कीयो।
तिनकों गुरु गुरु-पतिनि प्रेम करि अति अशीष शुभ दीयो ॥५६
ताकी सुन्दर अतिथि क्रिया करि रथ की थकनि मिटाई।
तब पूछी ऋषि राज-ऋषी सों राजकुशल हरखाई ॥ ५७
अवसि चाहिये कुशल, सकल थल, तबलो संग हमारे।
विविध विपत सों जाकी रच्छा जबलों हाथ तिहारे ॥ ५८

मन्त्र आपुके रिपु अलक्ष्य को नष्ट करत जब आई।
दृष्ट-लक्ष्य भेदी मम पैने शर लौटत खिसियाई ॥ ५९
सविधि आहुती परी अनल मे तव द्वारा मुनिराई।
वरपाभरन कृपी जो सूखत सूखा मे मुरझाई ॥ ६०
पूरी आयु पाइ मम परजा निडर निरापति मानो।
ताको हेतु प्रभो! सब केवल ब्रह्मतेज निज जानौ ॥ ६१
यहि प्रकार सुधि लेत गुरो! जय ब्रह्म-तनय तुम जाकी।
काटि आपदा, बढ़े न कैसे, नाथ सम्पदा ताकी ॥ ६२
मम अनुरूप तनय, रानी के कोउ न स्वामि लखावै।
धरा सदीपा रतन प्रसूता यासो मोहि न भावै ॥ ६३
मो पाछे यह समझि, श्राद्ध मे 'पिण्ड दान किमि पावैं'।
खात न पितर अघाय, समेटत स्वधा सदा दरसावै ॥ ६४
"पय दुरलभ मम गये" पितर अस करि विचारि निज जी मे।
सीरे भरत उसास, अश्रु मिलि तातो जल नित पीमे ॥ ६५
भयो देवऋण-मुक्त यज्ञ करि, परि हा! बिन सन्ताना।
जानहु उज्ज्वल अरु उदास मोहि लोकालोक समाना ॥ ६६
जप तप दानज पुण्य होत परलोकहि सदा सहाई।
शुद्ध बंश सन्तान लोक परलोकहि नित सुखदाई ॥ ६७
परम प्रेम कर निज कर सींच्यो बिन फल तस अनुहारी।
सुतविहीन लखि मोहि, विधाता क्यों नहि होत दुखारी ॥ ६८
भगवन्! सहो जात नहिं मोपै यह, अन्तिम ऋण भारी।
गज सम, जो बिन न्हान, अलानहि बँधिके, होत दुखारी ॥६९
जासो छूटौं नाथ! कृपा करि सोई तुरत बतावौ।
रवि-कुल-रक्षक सदा, विपति सों अब के मोहि बचावौ ॥ ७०

यह सब नृप सों जान, ध्यान धरि, नैन मूँदि मुनिराई।
सर सम सोवत मीन जहाँ, छिन एक समाधि लगाई ॥ ७१
तबै योग बल सों, नृपसंतति-बाधा कारण पायो।
पूरण योगी मुनि वशिष्ठ ने ऐसो ताहि जनायो ॥ ७२
"एक समय मिलि देवराज सों, जबै धरा दिसि आयो।
बैठी छांह कलपतरु, मग में सुरभी को तू पायो ॥ ७३
धरम-लोप-भय सों सुमिरन करि ऋतु न्हाई निज नारी।
भलो कियो नहिं भूप ! भूलि तब ता प्रदच्छिणा न्यारी ॥ ७४
आपो वा ने तोहि, कहत "तू करै अनादर मेरो।
पूजे बिन मो सुता चलै अब बंस कदापि न तेरो ॥" ७५
मतवारे दिग्गज चिंघारे सुरसरि श्रोत मँझारी।
जासों तैंने औ सारथि ने सुन्यो सराप न भारी ॥ ७६
'तासु अनादर करन' सिद्धि में यही विघन इक भारो।
पूजनीय पूजा को त्यागन रोकत काज हमारो ॥ ७७
हवि हित गई बरुण यज्ञहि सों, जो होगो चिरकाला।
उरग घिरयो जहँ द्वार, कठिन अति अब प्रवसन पाताला ॥ ७८
ता सुरभी की सुता प्रतिनिधी पावन तासु बनाई।
पूजहु पतिनी सहित देहि फल अवसि मोद मन पाई ॥ ७९
कथन करत ही यहि प्रकार, मुनि-आहुति-साधन हारी।
निरमल गऊ नन्दिनी आई बन सों बगदि पियारी ॥ ८०
धरें भाल सित रोम लहरिया मृदुल पटल तन वारी।
राजत रूप राशि जिमि सन्ध्या नव चन्द्रोदय धारी ॥ ८१
अति पावन जो यज्ञ न्हान सों ताजी पय सरसावै।
ऐन भरी, निरखत निज बछरा, ताहि रसा बरसावै ॥ ८२

ता खुर सो खुदि खुदि उठि रज कन परस्यो नृप तन जाई।
ढिग सो देत कढ़ी मनु ता को तीरथ फल अधिकाई ॥ ८३
लखि ता पावन रूप शुभाशुभ सगुनहि जानन हारे।
जानि मनोरथ सफल तासु, मुनि नृप सो वचन उचारे ॥ ८४

राजन! जानहु शीघ्र काज सब पुरिहैं अवसि तिहारे।
क्योंकि, कृपा करि यह कल्यानी आई नाम पुकारे ॥ ८५
कन्द मूल फल खाय, अनुसरहु जा गो कों मनधारी।
करहु प्रसन्न याहि तुम मानौ विद्या पढ़त विचारी ॥ ८६
चलहु, चलत जाको लखिके, तुम ठहरहु ठहरत जाके।
बैठहु, बैठत निरखि याहि. जल पीवहु, पीवत याके ॥ ८७
भक्तिमती तव सती, पूजि यहि, जासु संग निज जावै।
करि आवै बन निकट याहि पुनि साँझि समय लै आवै ॥ ८८

करै न जोलों दया निरन्तर सेवहु जाहि सम्हारी।
निज पितु सम मन मुदित पुत्रवारन के रहहु अगारी ॥ ८९
रानी सहित प्रेम सों राजा जो सब विधि परवीनौ।
देस काल को ज्ञान जाहि, धरि गुरु आयसु सिर लीनौ ॥ ९०

विधि सुत शिष्ट वशिष्ठ चतुर नृप-भाग बडाई कीनी।
कछुक राति बीतत, सोवन की ताहि रजायसु दीनी ॥ ९१

धारि तपोबल मन्त्र कुशल मुनि तउ नृप व्रतहि विचारी।
किय प्रबन्ध वन असन बसन निवसन को ता अनुसारी ॥ ९२

सवैया

लचि लौनी लता लहराइ रहीं, 'जहँ पर्नकुटी कुलदेव बताई।
निज प्यारी समेत बड़े सुख सों तहँ आयसु पाय रह्यो नृप जाई'

उठि ब्रह्म मुहूरत मे बटु-वृन्दन, वेदन की ध्वनि मंजुल गाई।
जियजानि प्रभात, कुसासन सों नरपाल जगे, अतिही हरसाई॥ ९३

सन् १९०५ ई०

द्वितीय सर्ग।

पूजी तबै धेनु महीप बाला।
चढ़ाइकै अक्षत गन्ध माला।
चुखाइ बच्छा नृप बाँधि लीन्हो।
गो को यशस्वी बन छांड़ि दीन्हों॥ १

पतिव्रता नारिन अग्रनीया।
सुदक्षिणा सुन्दर माननीया।
गो-खोज लागी शुचि मार्ग चाली।
चले स्मृती ज्यों श्रुति-अर्थपाली॥ २

दयाध्वजा कीरति-पुञ्ज दानी।
विदा करी भूपति आप रानी।
राखी गऊ रूप धरा विचारी।
नदीश चारथो थन जासु भारी॥ ३

धरापती, सेवक शेष टारी।
चल्यो व्रतै हेतु गऊ पिछारी।
न अन्य सो तासु शरीर रक्षा।
स्ववीर्य राखी मनु-वस-कक्षा॥ ४

खुजाइ, दैकैं तृण-कौर प्यारे।
बिडारि ता मच्छर डांस भारे।
बे रोक स्वच्छन्द जु ढील दीनी।
भूपाल ह्वै तत्पर सेव कीनी॥ ५
ठैरे गऊ ठैरत, तास चाले—
चलै, जहाँ बैठति बैठि, पालै—
स्वनेम, प्यासी जब नीर देवै।
छायेव ताको नरपाल सेवै॥ ६
बे राजचिन्हैं सुप्रताप वारो।
स्वतेज सों दीपत जा उजारो।
मनौ मदोन्मत्त गजेन्द्र भारी।
चुचाति ना जा मद-वारि-धारी॥ ७
लतानि सों केस बँधे सुहाये।
फिरै वनी, सो धनु को चढ़ाये।
रखाइवे के मिस नन्दिनी के।
सुधारिवे दुष्ट पशू बनी के॥ ८
चल्यो बिना सेवक तोउ राजा।
लग्यो प्रचेता सम तेज काजा।
विहंग बैठे तरु गान गावैं।
विजै-ध्वनी जास मनौ मचावैं॥ ९
वेली नवेली भरि ल्यारि प्यारी।
सप्रीति राजै ढिग में निहारी।
प्रसून-वर्षा तिहि पै जुटावैं।
खीलैं मनौ पौर सुता लुटावैं॥ १०

भ्रमै वनी में धनुबान धारी।
दयाल तोऊ नृप कों विचारी।
निशंक ताको मृग-दर्श कीन्हों।
बडी बडी आँखिन लाहु लीन्हो ॥ ११
जो वाँस के रन्ध्र भरैं वियारी।
बजाइ सोई मनु वेणु धारी।
उच्चै स्वरेण यश ता सुनामैं।
निकुञ्ज वैठी बनदेवि गामैं ॥ १२
मन्दी गुही सीतल-गन्धि प्यारी।
झर्ना-झरे-सीकरयुक्त व्यारी।
सेवै लगी भूप जवै सिधारयो।
छाते विना लूअन घाम मारयो ॥ १३
रखाइवे ज्यों वन भूप आयो।
सजोर निर्जोरहिं ना सतायो।
बुझी विना वृष्टि सबै दवागी।
विशेष वृद्धी फल पुष्प जागी ॥ १४
दसौ दिसा को करि के पवित्र।
विश्राम को साँझ ससै विचित्र।
चली नये पल्लव रंग वारी।
सूर्य्य प्रभा ज्यों मुनि-धेनु प्यारी ॥ १५
सम्पादिनी जो सब धर्म काजा।
पाछे चल्यो तासु दिलीप राजा।
सोहे तबै पावन दोउ प्रानी।
श्रद्धा स्वयं ज्यों सत्कार्य सानी ॥ १६

*कहुँ कहूँ शूकर कुण्ड न्हाते।
स्वघोसला बृक्षहि मोर जाते।
मृगा रमे शाब्दल सो विशेषी।
बनी बनी श्यामल भूप देखी॥ १७

प्रयत्न सों जो थन पीन भारी।
लै स्थूल भूपाल चलै अगारी॥
मन्दी चलैं चाल सम्हारि सोऊ।
करैं बनी सोभित पन्थ दोऊ॥ १८

लौटयो जबै धेनु पिछार आई।
सुदक्षिणा भूप लिवान धाई।
हरी निमेषी लखि प्रेम प्यासी।
अतृप्त इच्छा अति ही प्रकासी॥ १९

चल्यो मगै भूप गऊ पिछारी।
सुदक्षिणा सुन्दरता अगारी।
दोऊनि मे सो अस धेनु राजै।
ज्यो साँझ. रात्री दिन बीच भ्राजै॥ २०

परिक्रमा तास नवाइ माथै।
रानी करी साक्षत पात्र हाथै।
विशाल जो सींगन ठौर जाको।
पूज्यो मनो द्वार स्वकामना को॥ २१

---

* लरि लोरि तडागन में लिथरे तन सूकर के गन भाजत भारी।
जहँ रैन वसेरो करैं तरु ओरन मोर चलै मुख मोर निहारी।
मृग लोल कलोल करैं विहरैं चरैं घास हरी थल काहु मझारी।
इनसों अति चोयल चित्त चुभीलो चल्यो वन हेरत भूप अगारी॥१७

बच्छाभिलाषी चुपचाप ठाड़ी।
पूजा लई दोउन प्रीति बाढ़ी।
स्वभक्ति में देखत तासु प्रीति।
"करै कृपा शीघ्र" भई प्रतीति ॥ २२
बन्दे सपत्नी गुरु पाद राजा।
निश्चू भयो सो करि सान्ध्य काजा।
दे दूध बैठी गउ ज्यों निहारी।
त्योंही करी सेवन की तयारी ॥ २३
निवेदि पूजा, धरि दीन्ह दीयो।
सस्त्रीक राजा यह काज कीयो।
सोये पिछारी जब गाय सोई।
उठे गऊ संग प्रभात होई ॥ २४
ऐसे व्रतै धारि सुपुत्र काजै।
राजा सपत्नी यश रूप राजै।
सदा दुखी दीन महा बचाये।
इक्कीस ता ने दिन यों बिताये ॥ २५
बाईसवें कों निज दास हीयो।
गऊ तबै जाचन चित्त कीयो।
गंगा-मुखी-घास घनी मँझारी।
घुसी गुफा पर्वत राज भारी ॥ २६
न व्याघ्र जामें सक जाहि मारी।
गिरी छटा सोचि लखै पियारी।
बलात् ताकों गहि सिंह लीन्हौ।
अदृष्ट में सो नृप नाहिं चीन्हौ ॥ २७

कीन्हों गऊ आरतनाद तासों।
प्रतिध्वनी गूँज उठी गुफा सों।
ता ने लगी दृष्टि नृपाल खैंची।
जैसे हटै अश्व लगाम ऐंची॥ २८
गयो लख्यो व्हां धनुबाण धारी।
चढ़यो गऊ पाटल सिंह भारी।
ऊँची शिखा पर्वत धातु भ्राजै।
तापै मनौ पादप लोध राजै॥ २९
स्वशर्णपाली तब सिंहगामी।
शत्रु बिहीन औ मनु-दीप नामी॥
निषंग तीरै, हिय लाज आनी।
लयो चह्यौ मारन सिंह भानी॥ ३०
जो हाथ सूधो सर लैन धारो।
जम्यो तहाँ, ना उखरै उखारयो।
नख प्रभा भूषित पंख सोहै।
मनौ चित्यो चित्तर चित्त मोहै॥ ३१
जबै सक्यो ना हनि शत्रु ठाढ़ौ।
ठैरी भुजाए लखि क्रोध बाढ़ौ।
जरयो मनौ भीतर भूप भारो।
मंत्रौषधी सों विषहीन कारो॥ ३२
आर्याभिमानी मनुवंश लाज।
सोचो सवै अन्तर राज राज।
मनुष्य ज्यो बोलत देखि ताको।
भयो अचम्भो अति और जाको॥ ३३

अजी महाराज रहो वृथा ये।
जा शस्त्र सों होत कहा चढ़ाये।
जो शक्ति तोरै तरु मूल जाई।
सकै नहीं पर्वत कों हिलाई ॥ ३४

जबै सवारी वृष की विचारैं।
मो पीठ पै पाद पवित्र धारैं।
ता शम्भु को किंकर मोहि जानौ।
कुम्भोदर मित्र-निकुम्भ मानौ ॥ ३५

ढिंग जो तिहारे यह देवदारु।
गौरीश पाल्यो सुत ज्यों विचारु।
जो हेम कुम्भस्तन सों निकास्यो।
गणेश-मा को पय खूब चाख्यौ ॥ ३६

घिस्यो करी-बन्य कपोल जासो।
कढ़ी कछू कोमल छाल तासों।
तबै भवानी लखि सोच पागी।
मनौ सुतै तीखन चोट लागी ॥ ३७

तबैहि सों जो गज बन्य आमें।
डरायबे काज तिन्हें गुफा मे।
महेश आदेश यहाँ सम्हारौं।
मिलै वही ता महँ तोप धारौं ॥ ३८

गिरीश ये गौ बस ठीक दीन्ही।
भूँखो बड़ो, मो सुधि, भेजि लीन्ही।
करौं ब्रतै पारण आज जासौं।
जैसे करै राहु शशी-सुधासौं ॥ ३९

बिहाय लज्जा घर जाउ धाई।
तैंने गुरू भक्ति भली निभाई।
न शस्त्र जो बस्तु सकै रखाई।
यासो न योद्धा-यश छीनताई॥ ४०

सुनी जबै गर्वित सिंह बानी।
नरेश त्योंही सब बात जानी।
शम्भू करयो निष्फल बान भारी।
तजी अवज्ञा निज माँहि सारी॥ ४१

बिना गहे हू शर, भंग यत्न।
भयो, दयो ज्वाब नृपाल रत्न।
जैसे बृषा मारन बज्र लीनौ।
त्रिनैन दृष्टि कर थांवि दीनौ॥ ४२

बेकाम चेष्टा सब भाँति जा तैं।
मृगेन्द्र हास्यास्पद मोर बातैं।
चाहों कछू, पै अब हौं बखानौं।
क्यों? आप प्रानी पढ़ि जीय जानौ॥ ४३

हैं पूज्य मेरे हर, देव केतु।
सृष्टि स्थिती पालन नास हेतु।
किन्तु गुरुहू धन-नास स्वामी।
न योग्य है देखन आँखि सामी॥ ४४

सो आज लै मो यह देह सारी।
निबाहिये जीवन बृत्ति प्यारी।
है सांझ जाको सुत प्रेम जागौ।
ऋषी गऊ कौं अब देव त्यागो॥ ४५

हँस्यो कछू डाढ़ प्रकास कीन्हो।
गुहान्धकारै करि दूर दीन्हो।
सो फेरि भूतेश्वर दास प्यारौ।
पृथ्वीपती सो कहि यों उचारौ॥ ४६

तू एक छत्र जगराज छावै।
ज्वानी नई वैस-छटा चुचावै।
जो नैक काजैं बहु ये विगारै।
सूझी कहा तोहि वता गमारै? ४७

भूतानुकम्पा यदि तू विचारै।
दै प्रान जे एक गऊ उवारै।
जीवै पिता तुल्य, घनी विथा को।
संहारि, राखै पुनि स्वप्रजा कों॥ ४८

जो या गऊ को अपराध धारी।
डरै गुरू क्रोध कृशानु भारी।
अनेक गौ जा घट-ऐन वारी।
दै शान्त कीजो रिस तासु सारी॥ ४९

प्यारे लगातार अनन्द चाखौ।
वलिष्ठ तासों निज देह राखौ।
कछू धरा जीवन-भेद जानौ।
न तौ स्वराज्ये पद-शक्र मानो॥ ५०

मृगेन्द्र ने ये कहि चुप्प साधी।
प्रतिध्वनी तास भई अगाधी।
गुफा-शिला पाठ यही उचारैं।
सप्रीति मानौ नृप कों निवारैं॥ ५१

बारी भरे कातर नैन वारी।
वाने गऊ सिंह-घिरी निहारी।
दूनौ दया-आर्द्रित जास हीयो।
ता बात राजा सुनि ज्वाब दीयो॥ ५२

निश्चै वही जो क्षति सो बचावै।
शब्दार्थ 'क्षत्री' जग में कहावै।
का राज सो ता बिपरीत चालै?
का लाभ निन्दायुत प्रान पालै?॥ ५३

कैसे बुझाऊँ मुनि क्रोध भारी।
दैके गऊ और सु-दूध वारी।
साक्षात सुर्भी तुम याहि मानौ।
जो आप थॉमी हर तेज जानौ॥ ५४

स्वदेह दै याहि करौ विमुक्त।
मृगेन्द्र! तो सों यह न्याययुक्त।
स्वच्छन्द ह्वै भोजन आप हैगो।
मुनि-क्रिया विघ्न न हू परैगो॥ ५५

आपौ पराधीन करौ बिचार।
सयत्न रक्षौ तुम देवदार।
विहाय रक्षा क्षत दास आई।
सकै न स्वामी दिसि म्हौ दिखाई॥ ५६

चाहौ न किम्बा यदि मोहि मारौ।
तो ख्याल ह्वै मो यश-देह धारौ।
अवश्य ये पिंड विनष्ट होवैं।
मो से न आस्था इन मॉहि जोवैं॥ ५७

बातैं रचैं केवल प्रेम भारो।
जासों हि सम्बन्ध जुरयो हमारो।
मो मित्र तासो बनि शम्भुदास।
पूरी करौगे यह मोर आस॥ ५८

"तथास्तु" वानी हरि ज्यों सुनाई।
जमी भुजा ने पुनि शक्ति पाई।
निश्शस्त्र राजामिष पिंड वारी।
सिंहै समर्पी निज देह सारी॥ ५९

तबै उरैं साहस भूप धारी।
सोच्यो, भरै सिंह छलांग भारी।
औंधो गिरयो ज्यों नृप तास आगे।
प्रसून वर्षा सुर कर्न लागे॥ ६०

"बेटा उठौ" अमृत रूप वानी।
सुनी, उठ्यो भूपति आप ज्ञानी।
चीर अवन्ती गउ मात पेखी।
आगैं ठडी सिंह न मूर्ति देखी॥ ६१

विस्मित नृपै धेनु गिरा उचारी।
माया तबै जाँचन मैं पसारी।
ऋषी बलै को सक मोहि मारे।
न काल, व्याघ्रादि कहा बिचारे॥ ६२

तू घाल मोपै गुरुभक्तिपागौ।
प्रसन्न तो सो, बर पुत्र माँगौ।
न गाय हौं केवल दूध वारी।
मोकों गिनौ कामदुहा सुखारी॥ ६३

दुखी दबे दीनहिं दान रूप।
स्वबाहुयोद्धा कर जोर भूप।
स्वबंस कर्त्ता जस रंग-रॉचौ।
सुदच्छिणा के सुत एक यॉचौ॥ ६४
भूपाल इच्छा सुत-प्रेम-सानी।
तथा करी स्वीकृत धेनु मानी।
दोना दुहा मा पय पुत्र पायो।
दया भरी तास निदेस दीयो॥ ६५
बच्छाऽरु यज्ञोपरि जो बिसेस।
ता दूध कों पाय ऋषी निदेस।
चाहौं तऊ माय इतेक पायो।
मनौ रखी भूमि पडांम लीयो॥ ६६
ज्योहीं सुनी ऐसि महीप बानी।
दूनी गऊ तास सनेह सानी।
कढी गुफा सों तिहि संग धाई।
बिना थकी आश्रम ओर आई॥ ६७
गुरू हि जो गाय-प्रसाद लीनो।
हँसी-हँसी भूप निवेद दीनौ।
ता हर्ष चिन्है सबरो बखानौ।
कह्यो प्रिया सों दुहराय मानौ॥ ६८
जबै सुआदेस बशिष्ठ पाया।
बच्छाऽरु यज्ञापरि जो बचायो।
समूर्त्ति मानौ यश शुभ्र भाया।
सो नन्दिनी-दूध दलीप पायो॥६९

पूर्वोक्त प्रातव्रत पूर्ण कीन्हौ।
चल्यो जवै आशिरवाद दीन्हौ।
राजा स-रानी निज राजधानी।
विदा करयो हर्ष वशिष्ट मानी ॥ ७०
वशिष्ट-सस्त्रीक सवत्स गाय।
हुताश के हू ढिग भूप जाय।
परिक्रमा कीन्ह सहर्ष हीय।
साफल्यता युक्त स्वगौन कीय ॥ ७१
सधर्मपत्नी निर्विघ्न रूप।
मनोरथै पा रथ वैठि भूप।
ध्वनी लगै कानन जासु प्यारी।
रह्यो-सुखी मारग जात सारी ॥ ७२
न देखिवे सों उतकंठ भारी।
प्रजा-व्रती दूवर अग धारी।
सोरी करी आँखि नृपै त्रिशेषी।
नवीन चन्द्रोदय भाँति देखी ॥ ७३
प्रजा रच्यो स्वागत भूप लीन्हौ।
ध्वजा उड़ै नम्र प्रवेश कीन्हौ।
सर्पेन्द्र तुल्य भुज पै सँवारयो।
पुनः धरा भार धरेन्द्र धारयो ॥ ७४
जस नयन निकारयो अत्रि सों तेज, भारो।
अरु सुरसरि शम्भू अग्नि वीर्य्य सँवारो ॥
मह दुरवह तेजे लोक राजानि वारो।
तस नृप कुल काजै रानि ने गर्भ धारो ॥

रघु-चरित्र

निज पितु सो लहि राज अधिक रघु मुदित महा मन मांहैं।
रवि उजास जिमि पाइ हुतासन सांझ समै अति सोहै॥
नृप दिलीप पाछे ताको सुनि राजतिलक तत्काल।
पहली धुँधकत ज्वाल भाल भड़की नृप उरनि कराल॥ १

शत धृति धवल ध्वजा सम ताके नव वैभव को देखी।
प्रजा सप्रजा मुदित आँखि निज सीरी करी विशेषी॥
एक सङ्ग ता गजगामी ने दोउ दाबे स्वच्छन्द।
पूर्वज राजसिंघासन भुजबल निज बैरिन को बृन्द॥ २

श्रीपति रानी गुप्त रूप सो तिहि भूपतिमनि जानी।
छाया अनुमित पद्म छत्र छहरायो सिर रुचि मानी॥
समय समय बन्दीगन ढिंग मनमुदित सरसुती आन।
पढ़ि पढ़ि बिमल भाव जुत प्रस्तुति करयो तास सनमान॥ ३

नृप मानी मनु आदि यदपि सो भोगी हिय हुलसाई।
परि अनन्य पतिका सम अचला ताही मे रति पाई।
यथा उचित दे दण्ड प्रजामन हरयो भूप कमनीय।
जिमि ना शीतल ना ताती अति मलय पौन रमनीय॥ ४

घटी प्रजा रति नृप दलीप मे लखि ता गुन अधिकाई।
फलत आम जिमि मधुर मञ्जरी मजुल जाति भुलाई॥
नीति निपुन जन जब नव नृपहि सुझायो धर्म अधर्म।
द्वितीय पच्छ तजि चतुर सिरोमनि समझि गह्यो तब धर्म॥ ५

पञ्चभूत निज पुष्ट गुणनि सो अतिशय लही बड़ाई।
रघु के राज समय सब वस्तुनि नित नवीनता पाई॥

यथा चन्द्र हर्षावन सो अरु तपन धारि परताप।
प्रजा मनोरजन सो राजा तथा लस्यो वह आप ॥ ६

कर्ण प्रान्त पर्य्यन्त विस्तरित ताके नैन विशाला।
नेत्रवान परिकर्म प्रदर्शक शास्त्रन सों महिपाला ॥
कमल लक्षणा अमल अपर जनु राजलक्ष्मी आय।
थिरताजुत निधरक नृप चित को दयो सरद सरसाय ॥ ७

निरस परे पतरे अति वादर मारग तजि छितराये।
इक सँग ता कर रवि प्रताप जुग दस दिसानि में छाये।
धर्यो इन्द्र जब वरषा धनु रघु जय-धनु लियो उठाय।
पारी पारी प्रजा अर्थ हित निज निज लेत चढाय ॥ ८

कमल छत्र अरु कुसुमित कास चमर धरि ऋतु सुघराई।
रघु की होड करी, परि शोभा ताकी तबहुँ न पाई ॥
नृप-प्रसन्न आनन चमकत अरु चारु चमत्कृत चन्द।
दोउनि निरखि नेत्र धारिनि जन लह्यो सरस आनन्द ॥ ९

राजहस श्रेणिनि तारनि कुमुदिनि सुठि सरनि सुहाई।
जहँ देखहु तहँ कीर्ति कौमुदी जल थल सकल समाई ॥
ईख छाँह तर बैठि धान-रखवारिनि तिहि गुन गान।
बालापन लों के यशपूरित गावति मुदित महान ॥ १०

परम प्रशस्त अगस्त उदय सों बिमल भयो अति पानी।
रघु उदयत, उर तिरस्कार-मय-शङ्का रिपुदल मानी ॥
बड़ी टाटिवारे बृष करि करि ता बिक्रम-अनुहारि।
मदभरि डोंकत सींगनि सो सरितट खोदत खुर तारि ॥ ११

मद गन्धी सापरनि पुहुप सो अपुहि तिरस्कृत धारी।
जनु गज करि तारी सरसावत सप्त अंग मद-वारी ॥

पाँझ सरित करनी हरनी मग-करदम शरद सुभाय।
तिहि उछाह प्रथमहि जात्रा हित करी प्रेरना आय॥ १२

हय पूजन बिधि मधि सद् बिधि सों उदित हुतासन आई।
जनु तिहि दच्छिण लौं मिस करलै जय-माला पहराई॥
तज्यो न रिपु, तउ मन्दर गढ़ दृढ रच्छा-जतन कराइ।
बडबिधि सैन सहित दिग जय हित चल्यो सुभग रघुराइ॥ १३

नगर बडी बूढ़ी ता पै खीलन-बरषा बरसावैं।
मथत उदधि जनु छहरि लहरि हरि तन जल-कन सों छावैं॥
गयो पुरन्दर सम पूरब सो प्रथमहि ज्ञान निकेत।
मनहु पवन फहरात ध्वजन सों रिपुनि ताडना देत॥ १४

भयो अकास अवनि सम अरु भई अबनि अकास समाना।
रथ रज उडति धमकि धुरवा सम धावत गजदल नाना॥
आगे तेज शब्द ता पाछे तदनन्तर फिरि धूरि।
आछे पुनि रथ या क्रम चाली चतुरङ्गिनी सपूरि॥ १५

निज बल सकल अजल थल जलमय सघन बिपन तरु हीना।
तरनिन तरन जोग नदियन कों पाँझ नृपति करि दीन्हा॥
लस्यौ सैन लै जात पूर्व सागर नय नागर धीर।
जनु हर जटिल जटा भव सुरसरि सँग भागीरथ बीर॥ १६

सररर रव करि भोजपत्र मधि बाँसन सन धुनि कारी।
सुरसरि सीकर सहित पवन मग मे तिन सेवा धारी॥
छाँह देख केसर की मे बहुतक सेनक बलधाम।
बैठत-मृग मृगमदवासित सिल बिरमि कियौ बिसराम॥ १७

दलि अरि दलबल, करि तिन साहस दरप बिफल रघुराई।
कुञ्जर इव नृप-तरुन तोरि निज मग निरबिघन बनाई॥
या विधि पूरब जीति असेसनि देसनि वह रनबीर॥
पहुँच्यो ताल-मालरँग - रञ्जित श्याम समुन्दर तीर॥ १८

(अपूर्ण)

मुद्राराक्षस

प्रथम अङ्क के कुछ पद्यों का अनुवाद

को यह अति बडभागिनि, जिहि तुम सिर पै धारत ।
सुभग शशिकला, का या को यहि नाम उचारत ॥
यही नाम फिरि जान बूझि तुम क्यो बिसरायौ ।
नारी कों मैं पॅछि रही तुम इन्दु बतायौ ॥
तो पूछि लेउ बिजयाहि सों, यदि शशि को साँचु न धरै ।
इमि गंग छिपावत उमहि सो, शिव कौ छल रक्षा करै ॥१॥

होहु भले ही वुवन मे, मूरख महा, किसानु ।
किन्तु बई सत छेत्र मे, खेती वढति महानु ॥
सघन होत बल पकरि जो, काउ धान को वृच्छ ।
बीज बुवैया को न गुन, खेती गुन प्रत्यच्छ ॥३॥

कोउ मसाले कों बटत, कोउ जल भरत पवित्र ।
प्रफुलित कोउ प्रसून की माला गुहत विचित्र ॥
जब जब ओखलि पै गिरत, मूसल तिह तिह बार ।
पाछें पाछें सुन परत, सुखद शब्द हुँकार ॥४॥

आवौ वेगि पियारी अरी हाँ—
सब उपाय में चतुर गुनवती काज सँवारन हारी ॥
साधति अर्थ धर्म अरु कामहि, नित गृहस्थ सुखकारी ।
घर की रीति नीति सब जानति, सोचति बात अगारा ॥५॥

नीच केतु अरु क्रूर ग्रह, इनको गठित समाज ।
चारु चमत्कृत चन्द्रमा, पूर्ण मण्डलहिं आज ॥

बल सो चाहत ग्रसन ये, कैसी बात अजोग।
किन्तु ताहि रच्छत सदा, सब प्रकार बुध योग ॥६॥

यह सोई कौटिल्य विलोकहु, कुटिल बुद्धि सों छायौ।
कोप अनल में, नन्द वस जिन, हठ करि तुरत जरायौ॥
चन्द्र ग्रहन के कहत, चन्द्र को नाम सुनत भरमायौ।
चन्द्रगुप्त को शत्रु ग्रसित गिनि, आतुर इत ही आयौ ॥७॥

जो द्विरद-शोणित-स्वाद चाख्यो, धरत शोभ ललाम।
अरु अरुन-सन्ध्या-शशिकला सम पूज्य पूरन काम॥
जमुहाइवे मुख फटत ज्यों, प्रगटत स्वतेज प्रगाढ़।
अपमान करि, को चहत काढ़न, सिंह की यह दाढ़ ॥८॥

कोपानलकारी सघन, धूमलता अनुरूप।
निधन नन्द कुल को करन, काल नागिनी रूप॥
छूटी अस मेरी शिखा, अजहुँ न बाँधन देत।
को ऐसो पापी भयो, बधन जोग हत चेत ॥९॥

गहन नन्दकुल-बन-दहन, धूमकेतु बिकराल।
अस मम कोप-प्रताप की अति प्रचण्ड जो ज्वाल॥
ताहि निदरि या ही समय, कि कर्त्तव्य अजान।
अपुही ते जरिबौ चहत, कौन पतिंग समान ॥१०॥

दिशि के सम शत्रु-तिया मुख चन्द ते,
कालिमा शोक धुआँ की लगाइ।
द्रुम-मंत्रिनु पै, निज नीति के पौन सों,
मोह की छार अपार बिछाइ।

द्विज-नग्र निवासी तज्यों अस नन्द के,
वस के अकुर सारे नसाइ।
नहिं खेद सो किन्तु न पाइ कछू,
ये गई मम क्रोध की आँच सिराइ ॥११॥

मुँह के मुँह "धिक" शब्द रह्यो, नृप भय जिन शीश नवायो।
आसन लखि मोहि उठ्यो विवश, जिन जिय में सोच समायो॥
ते देखें मैं सकुल गिरायो, नन्दहिं आसनु ऐसे।
मत्त गयन्दहिं सिंह गिरावै शैल सिखिर सो जैसे ॥१२॥

नऊ नन्द कों भुवि-हृदय-शल्य समान शीघ्र उखारि।
सर-कमलिनी सम मौर्य मे नित-राजलक्ष्मी धारि।
रिपु मित्र में निज सुदृढ चित सो उचित न्याय दिखाय।
सम बाँटि कऽपऽरु प्रीति कौ फल दियो दोउनि चखाय ॥१३॥

प्रभु की प्रभुता लखि लोग सदा
निज स्वारथ लागि करैं सिवकाई।
बिपता में सहायक होइ वही,
जिहके मन आस अगार की छाई।
प्रभु के परलोक गये जो रहैं,
उपकार विचारि के, लोभ विहाई।
हैं विरले तुम सारिखे सेवक,
स्वामि सनेह रहैं मनलाई ॥१४॥

कायर बुद्धि-विहीन भक्ति-युत कौन काम कौ।
बुधि-विक्रम-सपन्न भक्ति-विन नहिं छदाम कौ।

जिन गुन सयुत उचित भक्ति प्रज्ञा औ बिक्रम।
ते सुख दुख में स्वामिभक्त बस और त्रिया सम ॥१५॥

जिह मन्त्री रहे बलवान सुजान,
सुकीर्तिलता जिन छाई बिसेखी।
तिह जीयत नन्द सबंस के जो,
थिर नाहि भई चलती अवरेखी।
वह चंचला चारु अचंचल ह्वै,
नृप चन्द्रगुप्त के अंक सुलेखी।
बस दूरि सकै करि को अब ताहि,
कहूँ छुटी चन्द सो चाँदनी देखी ॥२२॥

कछु जाइ मिले रिपु सो पहले
नहि जानि परै, केहि भाव सों प्रेरी।
अब जे कछु शेष रहे, चले जाउ,
रतीक नहीं परवा तिन केरी।
जिनु नन्द को बंस समूल नस्यो,
शत सेनहु सो जिह शक्ति घनेरी।
सब काज की साधन हारि वही,
इक बुद्धि रहै इक साथिन मेरी ॥२५॥

एकाकी स्वच्छन्द समुज्ज्वल जासु दान की धारा।
अभिमानी मद प्रबल सदा जो मन की करत अपारा।
बाँधि बुद्धि-गुन वृषल-हाथ सो बस तिहि लावौ ऐसे।
स्रवत दान-जल मद उच्छलङ्गल बली वन्य गज जैसे ॥२६॥

ईनोक आरडिन

अंग्रेजी साहित्य में उक्त नाम की छोटी सी काव्यात्मक पुस्तिका परम प्रसिद्ध है। इसकी मधुर एव सरल रचना से बड़े-बड़े सहृदय विद्वान् भी मुग्ध होते हैं। इसका प्रकृति-सौन्दर्य, मानवी स्वभाव का मनोहारी वर्णन तथा परमात्मा का प्रगाढ़ प्रेम अत्यानन्द का देने वाला है।

प्रारम्भ करते ही समुद्र तट के पर्वतीय दृश्य का चित्र इस भाँति खींचा गया है—

लम्बी शैल-श्रेनि खंडित जहँ घाटी सोहत।
समुद फैन अरु पीत बालुकन तहँ मन मोहत॥
दरसत सकरो घाट सट्यो बहु सदन सुहावन।
तासों चलि कछु परें जीर्न गिरिजागृह पावन॥
पनचक्की दिसि जान तहाँ ऊपर पथ भ्राजत।
परे कछुक नभ ओर धवल टीलो पुनि राजत॥
तहँ देनिस समसान सघन सुन्दर हरियल बन।
नरियल बीनन सदाँ सरद मे जहँ आवत जन॥
नीचे से में लहलहात धरि छटा अथोरी।
ललित हरित रँगभरी धरी जनु कलित कटोरी॥

समुद्र के किनारे रेत से घर बनाते हुए बच्चों का कैसा अच्छा स्वाभाविक वर्णन है—

रचत रेत-मय मजु मन्दरनि मोद मनावत।
उदधि उतंग तरंग उठत जब, तिनहिं बहावत॥

भजत तासु पाछे, जब आवत धावत आगे।
लघु पद-चिन्हनि धुअन नित्य सो तट पर त्यागे ॥

निराशा घनघोर घटा में आशा की प्यारी प्रभा किस प्रकार प्रकाश करती है, उसका भी रहस्य सुनिये—

यदपि अचानक आइ छाइ कुदिशा मँडरानी।
सुदिन लखन की आस तासु हिय तउ न सिरानी ॥
जिमि कोऊ जन जाय निकट तट लखत समुन्दर।
तरल तोय रवि किरन परसि चिलकत अति सुन्दर ॥
घिरत बदरिया होत कछुक उज्जल जल तम मय।
नसत नाहिं परि दूर जास-परकास-भास-चय ॥

परदेश जाता हुआ पति ईनोक अपनी अर्धाङ्गी 'एनी' को उपदेश दे रहा है और वह चुपचाप किंकर्त्तव्यविमूढ हो खड़ी है, उसका तत्कालीन चित्र देखिये—

जिमि कोउ जाइ तड़ाग बुड़ावति गागरि गोरी।
मन लागी नित भरन हार रसिया सो डोरी ॥
मुख लो सो भरिजात बहत जल बबलत ता धुनि।
प्रिय सनेह बस पर तिय सुनत न सकल सबद सुनि ॥

'पूर्व देशीय प्राकृतिक छटा का कैसा विशद वर्णन है—

हरी घास सो घिरे तुंग टीले नभ चुम्बत।
तिनमे सूधी सरल सरग दिसि डगर उलबत ॥
नव नरियल साखन की टुक सीसो झुक झमकनि।
कीट पखेरुन की दामिनि ज्यो दमकनि रमकनि ॥

लिपटनि ललित लतनि की द्रुमसों परम सुहावनि।
बढ़ि बढ़ि लहरत सुभग समुद के तल लो आवनि॥

एक जगह इस कविता का नायक ईनोक ईश्वर की प्रार्थना करते-करते तन्मय हो गया है। उसकी भी चासनी चखिये—

करन प्रार्थना लग्यो हृदय भरि प्रेम रसायन।
द्वैतभाव तजि जहाँ मिलत नित नर-नारायन॥

प्रार्थना का लाभ भी सुनि लीजिये—

यदपि रह्यो अति दुखी तबहु सो डर नहिं हारो।
तासु अचलप्रण दियो ताहि अति सुभग सहारो॥
तदुपरि दृढ विश्वास, ईश-गुन-गान प्रतापा।
हृदय पटल सों उमगि उमगि, नित आपुहि आपा।
समुद उपर गत रुचिर, मधुर जल स्रोत समाना।
जगत बिपति मधि रख्यो, ताहि तउ प्रफुलित प्राना॥

धन्य कविरत्न टेनीसन! धन्य तुम्हारा कविता कलाप!! ईनोक आरडिन की कुछ अन्य पंक्तियों का भी अनुवाद यहाँ दिया जाता है—

भये बरस सत यहाँ समुद तट निकट जु दरसत।
त्रिय वंशज त्रियबाल परस्पर आनँद परसत॥
पिकबैनी मृगशावकनैनी मिलि सुख दैनी।
नगर बिमोहनि मृदु रस ऐनी मञ्जुल 'एनी'॥
अपर "फिलिप रे" पनचक्की-पति-सुवन-अकेलो।
सुन्दर सरल सुभाउ सरस हिय अति अलबेलो॥

अरु गमार केवट सुत अविचल अच्तार्जन।
जो अनाथ अति सीत काल में पोत नसन सन ॥

(१० वी पक्ति से १५ वी पंक्ति तक)

कबहुँ कबहुँ परि सात दिना लो बनि अधिकारी।
कहत तऊ ईनाक उलटि निज आंख निकारी ॥
"यह मेरा घर अरु यह मेरा नवला नारी"।
"मेरी हू" कह फिलिप लेहु बट निज-निज बारी" ॥
जब अनबन मे बनत प्रबल तहँ ईनोक अधिपति।
नील नयने भरि नीर रोष बस फिलिप निबल अति ॥
उठन कबहुँ चिल्लाय "चिढ़त अति ईनोक तुमसो"।
तबै सरल करुणामयि वाला विनवति उनसो ॥
"मो पाछैं जनि झगरो करहुँ निहोर भारा।
थोरी - थोरी बनहुँ दोउन की प्राण पियारी" ॥
परि ज्योंही भोरा शिशुता की झलक सिरानी।
उदय अतन तन भयो चिलकि जागी तिन ज्वानी ॥
वा तरुणी के प्रेम पगे त्योंही दोऊ जन।
ईनोक ने खुलि कही सकल हिय बात मुदित मन ॥

(२६ पक्ति से ४० वी तक)

ईनोक ने हिय करयो सुदृढ़ संकलप सुहावन।
जहँ तक निज बस चले कमाई नित्य बचावन ॥
मोल लेन इक सुघर नाव अरु घरहि बनावन।
मञ्जुल ता मे मन भावन 'एनी' को लावन ॥

(४४ वी पक्ति से ४८ वीं तक)

भोगि घने दिन कठिन रोग की साँसति नाना।
प्राण पखेरू तजि तन पिञ्जर कियो पयाना॥

(२६८-२६९)

तहाँ फिलिप छिन ठहरि, हहरि इमि गिरा उचारी।
"एनी आयो इतै आज तव दया भिखारी॥"

(२८३-२८४)

वही चुकावै अवसि अवसि लागति तव सारी।
धन चाहें चुकि सकत दया नहिं चुके तिहारी॥

(३१९-३२०)

नर आनन नहिं कहूँ तहाँ अँखियन को दरसत।
मन मिलताऊ प्रेम भरी बतियन को तरसत।

(५७७-५७८)

इक दिन ता कानन में ताके कानन आई।
धीमी-धीमी हरख भरी परि दूर पठाई॥
निज गिरिजा गृह बिजय-घण्ट धुनि परी सुनाइ।
उछरि भयो मूर्छित ताको सुनि सो घबराई॥
कछुक काल गो बीत जबै चित चेत जगायो।
परम ललित परि घृणित द्वीप मधि निज तन पायो॥
लग्यो न होतो तास प्रेम मय जो षटपद-मन।
जन प्रतिपालक प्रति थल व्यापक प्रभुपद पदमन॥
तो अकेल नित रहन, जनित भय सागर माँही।
मरि जातो सो अवसि नहाँ कछु सशय नाहीं॥

(६०९-६१०)

ईनोक तहँ नहि एक शब्द काहू सो भाखत।
पर घर को, घर? का घर!! का वह घर हू राखत?

(६६३-६६४)

पिछवारे की ओर दूरि सो परम सुहाई।
टिमटिमाति इक जोति रुचिर तहँ परी दिखाई॥
मरन काज सो भयो ताहि लखि मन मे मोहित।
जिमि निज पथ सो भटकि पखेरू कोउ हारयो चित॥
निरखि प्रकाश प्रकाश-थम्भ को ललित ललामा।
धरतँ लालसा हृदय करन की तहँ बिसरामा॥
जौं लगि जानत नाहिं अभागो अपन मूढपन।
तजै न तौ लगि तहाँ हाय टकराय श्रमित तन॥

(७२२-७२६)

होरेशस

(लार्ड मैकाले कृत)

जबै झुकति हेमन्त-राति कारी कजरारी,
अरु उत्तर की सीरी-सीरी, चलति बियारी,
बरफीले ठौरनु सों करकस कठोर आई
उठि लिरियन को रुदन दूर लौ परत सुनाई,
जबै इकौसी परी झोंपरी के चहुँ ओरी,
सनसनाति आंधी आंजर पांजर झकझोरी
जरति पहारिनु-लठ्ठनिकी धुनि चटचटानि अति
सुनत देत ना कछू सोर सों श्रोनहि फोरति,
जबै महोच्छव औसर पै करिबे मिहमानी,
काढ़त पीपहिं खोलि नसीली सुरा पुरानी,
धरत उजेरे काज बडो सो लम्प उजारी,
करति भूंजि अखरोट विविधि भोजन तय्यारी,
जबै घेरि अगिहाने को मिलि सबरे बैठत,
बूढनु सों बतरात ज्वान निज मोछ उमेठत
बुनत बोड़या और टुकनियाँ जबै कुमारीं,
युवक बनावत धनुहीं जीय चुरावनहारी,
जबै कान्त कोउ क्रीट कलगी कवच सुधारै
कुल कामिनि कातत रहँटा प्रमोद उर धारे,
प्रमुदित अरु प्रेमाश्रु बहावत अति रुचि मानी,
सुनत सुनावत सकल अजहुँ यह वीर कहानी,

सत्य धीर होरेशस जिहि विधि बल दरसाई,
लियो विमल प्राचीन समय मे सेतु रखाई,

श्रम अरु निज कर्तव्य धार मुद मंगलदेनी,
जबै भारती नेह मिलत, तब बहति त्रिवैनी,
जामे जब कोउ जाति करति मज्जन अरु पाना,
होत अभ्युदय तासु कहत इतिहास पुराना
प्रजा राज-प्रिय राज प्रजा-प्रिय निरमल राजै
शत्रु नसत अपुसो अपु सुखमय शान्ति बिराजे
स्वर्गादपि गरीयसी अनुपम प्राण पियारी
मन्द मन्द मुसकात चन्द मुख करि उजियारी
मंजु माधुरी मूर्ति सदय उर नित सर्वानी
देति दरस सत स्वतन्त्रता जग जननि भवानी
उक्त सुमज्जन पान अवसि सज्जन जन कीजे
जग दुरलभ अनमोल मनुज जीवन फल लीजै

परिचय

कविरत्न पं० सत्यनारायण शर्मा सनाढ्य ब्राह्मण थे। अलीगढ़ (कोयल) के दुबेजी के खान्दान के थे। उनका जन्म २४ फरवरी सन १८८० मिती माघ शुक्ल १३ सोमवार संवत १९३६ को रात के दो बजे के लगभग सराय नामक ग्राम में हुआ था। उनकी मौसी सरदारकुंवरि ने उन्हें पाला पोसा। वे जारखी कोटला आदि स्थानों मे रईसो के घराने मे पढ़ाती थीं। धाँधूपुर (आगरा) निवासी बाबा रघुवरदास की चेली होने के कारण शिशु सत्यनारायण को बाबाजी को सौंप दिया था। बाबाजी के स्थान पर रह कर बालक सत्यनारायण ने विद्योपार्जन किया और क्रमशः वर्नाकुलर तथा अँग्रेजी मदरसो मे बी० ए० कक्षा तक तालीम पाई। ब्रजभाषा की कविता बडी ही सरस सुन्दर करते थे—स्वभाव बडा ही सरल था। भवभूति कृत उत्तर रामचरित्र नाटक और मालती माधव नाटक का गद्य-पद्यमय सुन्दर अनुवाद कर गये हैं जो कई बार प्रकाशित हो चुके हैं। अँगरेजी काव्यों के भी सुन्दर अनुवाद किये थे जो प्राप्त हैं। स्फुट कविताओं का सग्रह "हृदय तरग" के नाम से प्रकाशित हुआ था जिसका अब यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

ता० १५ अप्रेल सन् १९१८ को रात्रि समय धाँधूपुर मे ही मृत्यु हुई। प० बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित इनकी जीवनी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने प्रकाशित की है जिससे विस्तृत जीवन वृत्तान्त का पता चलता है।

शब्दार्थ

शब्दार्थ

असि = तलवार, ऐसे
अघ = पाप
अनूनौ = परिपूर्ण
अनल = आग
अनिल = हवा
अभिमत = मनचाहा
अलि, अली = भौंरा
अतन = कामदेव
अधवर = बीच मे
अंबु = जल
अरविन्द = कमल
अचक = धीरे से
आवरन = चादर
आजनेय = हनुमानजी
आखर = अक्षर
आनन = मुख
आयत = चौड़ा
इन्द्रवधूटी = बीरबहुट्टी
उत्तुंग = ऊँचा
उर्वरा = उपजाऊ
उपल = पत्थर
उनई = उठी
उडुगन = तारे
उसीर = खस
उत्पल = कमल
ओघ = समूह
कुसुमाकर = तालाब
करकस = कठोर
करवाल = तलवार
कर = हाथ, किरन
किशलय = कोपल
कीर = तोता
कलकठ = कोयल
करसायल = काला हिरन
कलापी = मोर
कुमुद = कमल
कमलिनी = कमल
कुमुदिनी = रात का कमल
कुजर = हाथी
कलिन्दी, कालिन्दी = जमना
कूल = किनारा
ग्रथित = गुंथे हुए
गयन्द = हाथी
गरब = अभिमान
गोपनीय = छुपा हुआ
गुहावन = पिरोने वाला
गरियारन = गली
गगन = आकाश, धूल
गामन = गाना, ग्राम

गंगाधर = शिव
घनसार = कपूर
चरी = चारा
छद्म = कपट
छैनी = नाशक
छिति = भूमि
छैंया = छाया
छोहरी = अल्हड़ लड़की
छपाकर = चन्द्रमा
जीवन = जल, जान
जातरूप = सोना
जीरन = पुराना
जरठाई = बुढ़ापा
जोबन = जवानी, देखना
जलजात = कमल
जंबु = जामुन
ज्योत्स्ना = चाँदनी
झुराय = झुर्री पड़ी हुई
झांक = गर्म हवा
टेव = आदत
टपका = छत चुचाना, आम
डगर = पगडंडी
तूमा पलटी = लौट-पलट
तामरस = कमल
तुसानल = भुसी की धुंधकती आग

तरनि = सूर्य
तरनि तनूजा = जमुना
तड़ित = बिजली
दारुयोषित = कठपुतली वाला
द्रुत = जल्दी
दीपति = चमकीला
दुकाल = बुरा समय
दुकूल = वस्त्र
दावानल = जंगल की आग
दीसि = दिखाई
द्विज = पक्षी, ब्राह्मण
द्विजराज = चन्द्रमा
दिनेश = सूर्य
धूमरि = धुमैले रंग की गाय
धाराधर = बादल
धावन = दूत, दौड़ना
धौरी = सफेद गाय
निस्प्रभ = प्रभाहीन
निकेत = घर
निकाई = नीकापन, अच्छाई
निधि = समुद्र खज़ाना
न्यार = चारा
नन्दन वन = इन्द्र का बाग
नलिन = कमल
नीड़ = घोसला
पायक = दूत

शब्दार्थ

प्रथित = प्रसिद्ध
पासान, पाषाण = पत्थर
प्रमत्त = नशे में
पद्म = कमल
प्रक्षालित = पखारे हुए
पोत = जहाज
प्रसून = फूल
परनत = बदलता है
पोखर = ताल
पिक = कोयल
पंचशर = कामदेव
पुलिन = रेती
परिमल = फूलों की धूल, सुगन्ध
पादप = पेड़
पाटल = गुलाब
परोदय = दूसरों की उन्नति
पयोधर = बादल, स्तन
पुरन्दर = इन्द्र
पजरना = जलना
पैनी = नोकदार डंडा
पंकरुह = कमल
प्रभाकर = सूर्य
प्रहास = जोर से हँसना
पंक = कीचड़
पटल = परदा
पलायन = भागना
फगुवारन = होली खेलने वाले
फनी = साँप
बरही = मोर
बारन = हाथी
बेला = घड़ी
बौरे = बावले, बौर आए हुए
बड़वानल = पानी की आग
बिसैलो = जहरी साँप
वसनाभिराम = वस्त्रों से शोभित
ब्यार, बयार = हवा
बारिद = बादल
बारिज = कमल
बेगरी = छितरी हुई
भुजंग = सर्प
भारती = सरस्वती
भुवि = भूमि
भोइ = धोखे मे पकड़ कर
मिलिन्द = भौंरा
महीधर = पहाड़
मठा धुँवारे = घर घाले
मगन = प्रसन्न, रास्ते
मराल = हंस
मधुप = भौंरा
मूरि, मूर = जड़

त्रमित्र = सूर्य
महरि = कृपा
मदन = कामदेव
मार = कामदेव
मुकुलित = फूले हुए
मयूख = किरन
मीर = अफसर
रसा = भूमि
रसनिधि = समुद्र
रतनाकर = समुद्र
रसना = जीभ
रसाल = रसदार, आम
रूख = पेड़
रंक = कंगाल
रंच = जरा भी
लांगूल = पूँछ
लौनी = नमकीन, सुन्दर
विद्युत = बिजली
विश्रुत = विख्यात
वैजयन्ती = माला
व्यतिक्रम = उलटा
वाचाल = बक्की
विराम = ठहरने का स्थान
विकृत = बिगड़ा रूप
वासर = दिन
विमाता = सौतेली माँ
वज्री = इन्द्र
शस्य = खेती
श्रुति = कान, वेद
श्री = लक्ष्मी, शोभा
शालि = धान
शशांक = चन्द्रमा
षटपद = भौंरा
सोकर = बूंद
सतत = सदा
सौख्य = सुख
संकुलित = इकट्ठ
सुवरन = सोना, अच्छा रंग
सत्वर = शीघ्र
सिराना = ठंडा पड़ना, नाश हो
सोपान = सीढ़ी
सरोरुह = कमल
सघन = बादल की भाँति, गहरा
सुरलि = सुरीली
सिदौसो = जल्दी
सीरक = ठंडक
सामी, समुहे = सामने
सलिल = जल
सुधाकर = चन्द्रमा
हीतल = हृदय
हतत्रासी = निराश
क्षांति = क्षमा, बर्दाश्त

द्वितीय खण्ड

अव्यक्त = छुपा हुआ ।
अनुदात्त = तुच्छ, नीच ।
अछदम = बे कपट ।
अछुद्र = बडा ।
अमेय = बेहद ।
अरज्यो = प्राप्त किया ।
अलान = हाथी बाँधने की जंजीर ।
इजार = पाजामा ।
इकौसी = एकान्त में ।
उदात्त = उदार, श्रेष्ठ ।
उरग = सर्प ।
उजास = प्रकाश ।
उजेरे = उजाला ।
कालकूट = ज़हर ।
कीरतिजा = राधिका जी ।
केकी = मोर ।
गिरीन्द्रजा = पारवती ।
गारत = नष्ट ।
घांघरो = लहँगा ।
घाल = डाल ।
चौल = हँसी, मजाक ।
चिबुक = ठोड़ी ।
चुखाय = दूध पिलाकर ।
चुचाति = टपकती ।
चिलकत = चमकता है ।
छार = राख ।
जवनिका = पर्दा ।
जड़मति = मूर्ख ।
झख = मछली ।
झाँझरी = जर्जर ।
ठौर = जगह ।
ढुकनिया = डलिया ।
थरप्यो = चढ़ाया ।
दयार्द्र = दया से पिघला हुआ ।
दुरवह = जो कठिनता से सहा जाय
धौरे = सफेद ।
धोपर = दुपहर ।
धीरूपे = बुद्धि स्वरूप (सरस्वती)
धूसरी = मैली ।
धरा = ज़मीन ।
नांखैं = लांघैं ।
नेती = डोरी ।
निचय = समूह ।
निपूतौ = निपुत्र ।
नीठ = कठिनता से ।
पिछौरी = चादर ।
पुरन्दर = इन्द्र ।
प्रगल्भ = चतुर, होशियार ।
पन्नग = सर्प ।
प्रतिचा = धनुष की डोरी ।

प्राचीर = शहरपनाह ।
पादप = पेड़ ।
पारण = व्रत खोलना ।
प्रशस्त = सुंदर ।
पोत = जहाज़ ।
पौरसुता = पुर की कन्याएँ ।
बार = देर ।
बदरिया = बादल (छोटा)
बसी = बस में करने वाला ।
बारबधू = वेश्या ।
बेगाना = ग़ैर ।
बकन = बगुले ।
बिरवन = पौधे ।
बासव = इन्द्र ।
बिड़ारि = हटा कर ।
बई = बोई गई ।
बोइया = छोटी डलिया ।
बगदि = लौट कर ।
भैन = बहिन ।
भानुसता = जमुना
मुदाम = सदा ।
मठारना = मज़ाक उड़ाना ।
मदीय = मेरा ।
मधुकर = भौंरा ।
मूसे = चूहे ।
मजूम = भाँग की मिठाई ।
मृगमद = कस्तूरी ।
मिथुन = जोड़ी ।
याची = भिखारी ।
रावरो = आपका ।
रन्ध्र = सूराख़ ।
लीलि को टीकौ = कलंक ।
लिरिया = भेड़िया ।
वारि = पानी ।
वाद्य = बाजा ।
वह्नि = आग ।
विवृत = बिगड़ा, फटा हुआ ।
वेनु = बाँसुरी ।
वरुणालय = समुद्र
वसा = चरबी ।
सुधांशु = चंद्रमा ।
सहिष्णु = सहनशील ।
सुरभी = गऊ ।
सपूरि = पूर्ण ।
सर्पेन्द्र = शेष ।
हुताश = आग ।
हली = बलराम ।